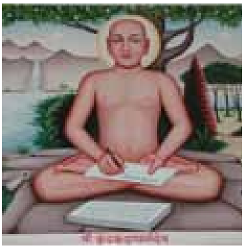

JAIN Adhyatma Academy of North America

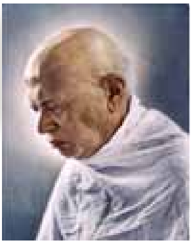

Celebrating

1967 – 2017

16th Annual Shibir • July 1 - July 5, 2016

@ Franklin Township Jinalaya, New Jersey

Walking the Path of Adhyatma To Get Rid of Mithyatva, continues...

शास्त्राभ्यास की महिमा

स्वाध्यायः परमं तपः

देखो ! शास्त्राभ्यास की महिमा, जिसके होनेपर परंपरा आत्मानुभव दशा को प्राप्त होता है, मोक्षरूप फल को प्राप्त होता है। यह तो दूर ही रहो, तत्काल ही इतने गुण प्रगट होते हैं -

१. क्रोधादि कषायों की तो मंदता होती है।
२. पंचेंद्रियों के विषयों के बारें में प्रवृत्ति रुकती है।
३. अति चंचल मन भी एकाग्र होता है।
४. हिंसादि पांच पापोंमें प्रवृत्ति नहीं होती।
५. स्तोक (अल्प) ज्ञान होनेपर भी त्रिलोक के तीन कालसंबंधी चराचर पदार्थों का जानना होता है।
६. हेय - उपादेय की पहचान होती है।
७. ज्ञान आत्मसन्मुख होता है।
८. अधिक - अधिक ज्ञान होनेपर आनंद उत्पन्न होता है।
९. लोक में महिमा - यश विशेष होता है।
१०. सातिशय पुण्य का बंध होता है।

- पं. टोडरमलजी- 'सम्यग्ज्ञानचंद्रिका'

तुमने भाग्य से अवसर पाया है, इसलिये तुमको हठ से भी तुम्हारे हित के लिए प्रेरणा करते हैं। जैसे हो सके वैसे इस शास्त्र का अभ्यास करो। अन्य जीवों का जैसे बने वैसे शास्त्राभ्यास कराओ। जो जीव शास्त्राभ्यास करते हैं उनकी अनुमोदना करो। पुस्तक लिखवाना और पढ़ने पढ़ाने वालों की स्थिरता करनी इत्यादि शास्त्राभ्यास के बाह्य कारण उनका साधन करना, क्योंकि उनके द्वारा भी परंपरा कार्य सिद्धि होती है व महत् पुण्य उत्पन्न होता है।।

'सत्तास्वरुप' ८८

4557 Glenville Drive • Plano, Texas 75093
Tel: 972-424-1029
Email: jainadhyatma@gmail.com

Log on to
Kanjiswami.guru

श्री समयसार महामण्डल विधान

मंगलाचरण

(अडिल्ल[1])

समयसार का एकमात्र प्रतिपाद्य जो।
आत्मख्याति का एकमात्र आराध्य जो।।
अज अनादि अनिधन अविचल सद्भाव जो।
त्रैकालिक ध्रुव सुखमय ज्ञायकभाव जो।। १ ।।

परमशुद्धनिश्चयनय का है ज्ञेय जो।
सत्श्रद्धा का एकमात्र श्रद्धेय जो।।
परमध्यान का ध्येय उसे ही ध्याऊँ मैं।
उसे प्राप्त कर उसमें ही रम जाऊँ मैं।। २ ।।

समयसार अरु आत्मख्याति के भाव को।
जो कुछ जैसा समझा है मैंने प्रभो।।
उसी भाव को सहज सरल शैली विषै।
विविध पक्ष से जन-जन के हित रख रहा।। ३ ।।

१. अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आएगा? .... की धुन पर गायें।

इसमें भी है एक स्वार्थ मेरा प्रभो! ।
नित प्रति ही चित रहा करें इसमें विभो ।।
मेरे मन का हो ऐसा ही परिणमन ।
मन का ही अनुकरण करें हित-मित वयन ।। ४ ।।

अपनापन हो निज आतम में नित्य ही ।
अपना जानूँ निज आतम को नित्य ही ।।
रहे निरन्तर निज आतम में ही रमन ।
रहूँ निरन्तर निज आतम में ही मगन ।। ५ ।।

अन्य न कोई हो विकल्प हे आत्मन्! ।
निज आतम का ज्ञान-ध्यान-चिन्तन-मनन ।।
गहराई से होय निरन्तर अध्ययन ।
निश-दिन ही बस रहे निरन्तर एक धुन ।। ६ ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

सम्पूर्ण जिनागम का सिरमौर

भगवान आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादक ग्रन्थाधिराज समयसार जिनागम का अजोड़ रत्न है, सम्पूर्ण जिनागम का सिरमौर है । आचार्य अमृतचन्द्र इसे **'जगत् का अद्वितीय अक्षय चक्षु'** कहते हैं और कहते हैं कि **'जगत् में इससे महान और कुछ भी नहीं है ।'**

समयसार का समापन करते हुए आचार्य कुन्दकुन्द स्वयं लिखते हैं कि **'जो आत्मा, इस समयसार नामक शास्त्र को पढ़कर, इसमें प्रतिपादित आत्मवस्तु को अर्थ व तत्त्व से जानकर, उस आत्मवस्तु में स्थित होता है, अपने को स्थापित करता है; वह उत्तम सुख को प्राप्त करता है अर्थात् वह अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द को पाता है ।'**

– समयसार, ज्ञायकभावप्रबोधिनी टीका, पृष्ठ ३

१

श्री समयसार पूजन

स्थापना

(रोला)

निर्ग्रन्थों का परम ग्रन्थ जो समयसार है।
शुद्धातम का प्रतिपादक जो समयसार है।।
उसे जानकर धन्य करें हम अपना जीवन।
भक्तिभाव से हम करते हैं उसकी पूजन।।

ॐ ह्रीं श्री समयसारपरमागम! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्री समयसारपरमागम!! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ, ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्री समयसारपरमागम!!! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(अवतार)

जल

निर्मल जल शुद्ध स्वरूप, अपने अन्तर में।
पावन कर लूँ निजरूप, अपने इस भव में।।
है समयसार सर्वस्व, ग्रन्थ निर्ग्रन्थों का।
हम करें नित्य स्वाध्याय, सभी सद्ग्रन्थों का।।

ॐ ह्रीं श्रीसमयसारपरमागमाय जन्म-जरा-मत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

शीतल चन्दन-सा शान्त, अपना आतम है।
निज नित्य निरंजन जान, परम परमातम है।।
है समयसार सर्वस्व, ग्रन्थ निर्ग्रन्थों का।
हम करें नित्य स्वाध्याय, सभी सद्ग्रन्थों का।।

ॐ ह्रीं श्रीसमयसारपरमागमाय संसार-ताप-विनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अक्षत

अक्षत जो आतमराम, उसमें अपनापन।
करके हम अपने आप, करें सम्यग्दर्शन।।
है समयसार सर्वस्व, ग्रन्थ निर्ग्रन्थों का।
हम करें नित्य स्वाध्याय, सभी सद्ग्रन्थों का।।

ॐ ह्रीं श्रीसमयसारपरमागमाय अक्षय-पद-प्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

पुष्प

निर्गन्ध आतमाराम, सुख का सागर है।
पुष्पों का है क्या काम, अगन्ध अपना घर है।।
है समयसार सर्वस्व, ग्रन्थ निर्ग्रन्थों का।
हम करें नित्य स्वाध्याय, सभी सद्ग्रन्थों का।।

ॐ ह्रीं श्रीसमयसारपरमागमाय काम-बाण-विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

नैवेद्य

अत्यन्त मधुर शुद्धात्म-रूपी चरु लेकर।
हे समयसार जिनराज! तुमको अर्पित कर।।
है समयसार सर्वस्व, ग्रन्थ निर्ग्रन्थों का।
हम करें नित्य स्वाध्याय, सभी सद्ग्रन्थों का।।

ॐ ह्रीं श्री समयसारपरमागमाय क्षुधा-रोग-विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

दीप

यह समयसार-सा दीप, आतम परकाशक।
महिमा है अगम अनूप, अद्भुत सुखदायक।।
है समयसार सर्वस्व, ग्रन्थ निर्ग्रन्थों का।
हम करें नित्य स्वाध्याय, सभी सद्ग्रन्थों का।।

ॐ ह्रीं श्री समयसारपरमागमाय मोहान्धकार-विनाशयनाय दीपं नि. स्वाहा।

धूप

निज समयसारमय धूप, कर्मेन्धन दाहे।
निर्मल शुद्धात्मस्वरूप, अनुपम अपना है।।
है समयसार सर्वस्व, ग्रन्थ निर्ग्रन्थों का।
हम करें नित्य स्वाध्याय, सभी सद्ग्रन्थों का।।

ॐ ह्रीं श्री समयसारपरमागमाय अष्ट-कर्म-दहनाय धूपं नि. स्वाहा।

फल

निज समयसार के ध्यान, का है अनुपम फल।
जो करे ध्यान से ध्यान, वही हो जाय सफल।।
है समयसार सर्वस्व, ग्रन्थ निर्ग्रन्थों का।
हम करें नित्य स्वाध्याय, सभी सद्ग्रन्थों का।।

ॐ ह्रीं श्री समयसारपरमागमाय मोक्ष-फल-प्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

अर्घ्य

यह समयसार बहुमूल्य, अद्भुत अनुपम है।
मिट जावे सब अज्ञान, हमारा अनुभव है।।
है समयसार सर्वस्व, ग्रन्थ निर्ग्रन्थों का।
हम करें नित्य स्वाध्याय, सभी सद्ग्रन्थों का।।

ॐ ह्रीं श्री समयसारपरमागमाय अनर्घ्य-पद-प्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

समयसार को साधकर, बने सिद्ध भगवान।
अनन्त चतुष्टय के धनी, श्री अरिहन्त महान।। १।।

आचारज पाठक मुनी, प्रमत्त और अप्रमत्त।
गुण में नित विचरण करें, नमन करूँ मैं नित्य।। २।।

ज्ञायक-भाव-प्रकाशिनी, भाषी श्री भगवन्त।
परमतत्त्व प्रतिपादिनी, जिनवाणी जयवन्त।। ३।।

(अडिल्ल)

साधकगण का एकमात्र है साध्य जो।
मुक्तिमार्ग का एकमात्र आराध्य जो।।
उसमें ही मन रमे निरन्तर रात-दिन।
परमसत्य शिव सुन्दर ज्ञायकभाव जो।।४।।

(रोला)

केवल ज्ञायकभाव जो बद्धाबद्ध नहीं है।
जो प्रमत्त-अप्रमत्त न शुद्धाशुद्ध नहीं है।।
नय-प्रमाण के जिसमें भेद-प्रभेद नहीं हैं।
जिसमें दर्शन-ज्ञान-चरित के भेद नहीं हैं।।५।।

जिसमें अपनापन ही दर्शन-ज्ञान कहा है।
सम्यक्चारित्र जिसका निश्चल ध्यान रहा है।।
वह एकत्व-विभक्त शुद्ध आतम परमातम।
अज अनादि मध्यान्त रहित ज्ञायक शुद्धातम।।६।।

गुण-भेदों से भिन्न सार है समयसार का।
पर्यायों से पार सार है समयसार का।।

मुक्तिवधू का प्यार सार है समयसार का।
एकमात्र आधार सार है समयसार का।।७।।
शुद्धभाव से बलि-बलि जाऊँ समयसार पर।
जीवन का सर्वस्व समर्पण समयसार पर।।
समयसार की विषय-वस्तु में नित्य रमे मन।
समयसार के ज्ञान-ध्यान में बीते जीवन।।८।।

शुद्धभाव से करूँ विरेचन पुण्य-पाप का।
शुद्धभाव से करूँ विवेचन समयसार का।।
समयसार जो शुद्धातम का प्रतिपादक है।
शुद्ध ज्ञानमय परमभाव का उद्घाटक हैं।।९।।

ॐ ह्रीं श्री समयसारपरमागमाय जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

महिमा शुद्धस्वभाव की, जिसका आर न पार।
समयसार गाता रहे, अद्भुत अपरम्पार।।१०।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

समयसार का प्रयोजन

आचार्यदेव कहते हैं कि **'इस समयसार में मैं जो कुछ भी कहूँगा, वह सब वस्तु-स्वरूप के अनुरूप तो होगा ही; सर्वज्ञ परमात्मा की दिव्यध्वनि के अनुसार भी होगा, गणधरदेव रचित द्वादशांग के अनुसार भी होगा तथा शुद्धात्मा और सम्पूर्ण पदार्थों के सही स्वरूप को प्रकाशित करनेवाला ही होगा।** यह काम मैं स्व-पर के कल्याण के लिए ही कर रहा हूँ। वह स्व-पर का कल्याण भी कोई लौकिक प्रयोजन की सिद्धि करनेवाला नहीं है अर्थात् अनादिकालीन मोह के नाश के लिए ही यह उपक्रम है।'

– समयसार, ज्ञायकभावप्रबोधिनी टीका, पृष्ठ ९

२

पूर्वरंग-समन्वित
जीव-अजीव अधिकार पूजन

स्थापना

(हरिगीत)

जगत् के चेतन-अचेतन, तत्त्व की यह बात है।
जीव और अजीव के, अधिकार की यह बात है।।
आतमा की बात है, परमातमा की बात है।
परम अनुपम शुद्ध ज्ञायकभाव की यह बात है।।

(दोहा)

देहादिक से भिन्न जो, पर्यायों से पार।
ज्ञानस्वभावी आतमा, दे आनन्द अपार।।

वर्णादि - रागादि से, है यह आतम भिन्न।
शुद्ध बुद्ध चैतन्यमय, और अखण्ड अनन्य।।

जीव-अजीव अधिकार की, पूजन परमानन्द।
भक्तिभाव से करें तो, कटें करम के फन्द।।

ॐ ह्रीं श्रीसमयसारे जीवाऽजीवतत्त्वप्रतिपादक-पूर्वरंग-समन्वित-श्रीजीवाऽजीवाधिकार! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्रीसमयसारे जीवाजीवतत्त्वप्रतिपादक-पूर्वरंग-समन्वित-श्रीजीवाऽजीवाधिकार! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ, ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्रीसमयसारे जीवाजीवतत्त्वप्रतिपादक-पूर्वरंग-समन्वित-श्रीजीवाऽजीवाधिकार! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(अवतार)

जल

यह जल मलनाशक वस्तु, अनुपम निर्मल है।
रे! तृषा-वेदनाशान्त-करन को शीतल है।।
रे! यह अधिकार महान, वस्तु का प्रतिपादक।
आतम अभिराम जहान[१]-, ज्ञेयों का ज्ञायक।।

ॐ ह्रीं श्रीसमयसारे जीवाऽजीवतत्त्वप्रतिपादक-पूर्वरंग-समन्वित-श्रीजीवाऽजीवाधिकाराय जन्म-जरा-मत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

भव-तप-हरचन्दन-गन्ध,शशि-समशीतल है।
इसका आराधक आज, सभी भूमण्डल है।।
रे! यह अधिकार महान, वस्तु का प्रतिपादक।
आतम अभिराम जहान-, ज्ञेयों का ज्ञायक।।

ॐ ह्रीं श्रीसमयसारे जीवाऽजीवतत्त्वप्रतिपादक-पूर्वरंग-समन्वित-श्रीजीवाऽजीवाधिकाराय संसार-ताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत

अक्षत आतम अभिराम, अमर अविनाशी है।
इस आतम का गुणगान, सभी करते ही है ।।
रे! यह अधिकार महान, वस्तु का प्रतिपादक।
आतम अभिराम जहान-, ज्ञेयों का ज्ञायक।।

ॐ ह्रीं श्रीसमयसारे जीवाऽजीवतत्त्वप्रतिपादक-पूर्वरंग-समन्वित-श्रीजीवाऽजीवाधिकाराय अक्षय-पद-प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

सुर-तरु के पुष्प अनेक, सुर-गण लावत हैं।
है समयसार गुण-खान, गणधर गावत हैं।।

१. लोकालोक के

रे! यह अधिकार महान, वस्तु का प्रतिपादक।
आतम अभिराम जहान-, ज्ञेयों का ज्ञायक।।

ॐ ह्रीं श्रीसमयसारे जीवाऽजीवतत्त्वप्रतिपादक-पूर्वरंग-समन्वित-श्रीजीवा-ऽजीवाधिकाराय काम-बाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नैवेद्य

नैवेद्य मधुर गुणखान, षट्रस के लाया।
ना तृप्त हुआ भगवान, भक्ति से लाया।।
रे! यह अधिकार महान, वस्तु का प्रतिपादक।
आतम अभिराम जहान-, ज्ञेयों का ज्ञायक।।

ॐ ह्रीं श्रीसमयसारे जीवाऽजीवतत्त्वप्रतिपादक-पूर्वरंग-समन्वित-श्रीजीवा-ऽजीवाधिकाराय क्षुधा-रोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप

तमहर दीपक ना देव, मोहतम नाश करे।
शरणा मैं आया नाथ, मोहतम नाश करो।।
रे! यह अधिकार महान, वस्तु का प्रतिपादक।
आतम अभिराम जहान-, ज्ञेयों का ज्ञायक।।

ॐ ह्रीं श्रीसमयसारे जीवाऽजीवतत्त्वप्रतिपादक-पूर्वरंग-समन्वित-श्रीजीवा-ऽजीवाधिकाराय मोहान्धकार-विनाशयनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप

यह धूप दशांगी नाथ!, न कर्म की नाशक है।
यह आतम है सुखधाम, स्व-परप्रकाशक है।।
रे! यह अधिकार महान, वस्तु का प्रतिपादक।
आतम अभिराम जहान-, ज्ञेयों का ज्ञायक।।

ॐ ह्रीं श्रीसमयसारे जीवाऽजीवतत्त्वप्रतिपादक-पूर्वरंग-समन्वित-श्रीजीवा-ऽजीवाधिकाराय अष्ट-कर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

ताजे प्रासुक फल आज, लेकर आया हूँ।
हो सफल भावना आज, शरण में आया हूँ।।
रे! यह अधिकार महान, वस्तु का प्रतिपादक।
आतम अभिराम जहान-, ज्ञेयों का ज्ञायक ।।

ॐ ह्रीं श्रीसमयसारे जीवाऽजीवतत्त्वप्रतिपादक-पूर्वरंग-समन्वित-श्रीजीवा-ऽजीवाधिकाराय मोक्ष-फल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

यह अर्घ्य अनर्घ्य महान, लेकर मैं आया।
चरणों में अर्पित नाथ, करने को आया।।
रे! यह अधिकार महान, वस्तु का प्रतिपादक।
आतम अभिराम जहान-, ज्ञेयों का ज्ञायक।।

ॐ ह्रीं श्रीसमयसारे जीवाऽजीवतत्त्वप्रतिपादक-पूर्वरंग-समन्वित-श्रीजीवा-ऽजीवाधिकाराय अनर्घ्य-पद-प्राप्तये-ऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अर्घ्यावली[1]

।। पूर्वरंग ।।

(दोहा)

देहादिक से भिन्न जो, पर्यायों से पार।
ज्ञानस्वभावी आतमा, दे आनन्द अपार।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

१. **नोट –** इस विधान में अर्घ्यावली के अन्तर्गत समयसार की गाथाओं एवं डॉ. भारिल्लकृत गाथाओं व आत्मख्याति के कलशों के पद्यानुवादों का प्रयोग किया गया है; उनके क्रमांक भी मूलानुगामी रखे गये हैं। पाठकगण, इनकी विस्तृत व्याख्या हेतु ज्ञायकभाव-प्रबोधिनी टीका का अच्छी तरह अध्ययन करें।

सर्वप्रथम आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने आत्मख्याति टीका के मंगलाचरण में तीन कलशों के माध्यम से 'भगवान आत्मा व अनेकान्तमयी जिनवाणी माता[२] को नमस्कार करके, टीका लिखने का प्रयोजन' प्रगट करते हैं –

(दोहा)

निज अनुभूति से प्रगट, चित्स्वभाव चिद्रूप।
सकलज्ञेय-ज्ञायक नमौं, समयसार सद्रूप।।१।।

ॐ ह्रीं आत्मख्याति-मंगलाचरणयुक्त-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१।।

(सोरठा)

देखे पर से भिन्न, अगणित गुणमय आतमा।
अनेकान्तमय-मूर्ति, सदा प्रकाशित ही रहे।।२।।

ॐ ह्रीं अनेकान्तमूर्तये श्रीसरस्वतीदेव्यैः नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२।।

(रोला)

यद्यपि मैं तो शुद्ध मात्र चैतन्यमूर्ति हूँ,
फिर भी परिणति मलिन हुई है मोहोदय से।
परम विशुद्धि को पावे वह परिणति मेरी,
समयसार की आत्मख्याति नामक व्याख्या से।।३।।

ॐ ह्रीं परमविशुद्धिप्रदायक-श्रीआत्मख्यातये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३।।

अब, **आचार्य कुन्दकुन्ददेव विरचित समयसार की मूल गाथाएँ प्रारम्भ** होती हैं; सर्वप्रथम मूल समयसार ग्रन्थ के मंगलाचरण में आचार्यदेव, 'सर्व सिद्धों को नमस्कार' करते हैं –

(हरिगीत)

ध्रुव अचल अनुपम सिद्ध की, कर वन्दना मैं स्व-पर हित।
यह समयप्राभृत कह रहा, श्रुतकेवली द्वारा कथित।।१।।

ॐ ह्रीं मंगलस्वरूप-श्रीसर्वसिद्धेभ्यो नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४।।

अब, 'समय के दो भेद - स्वसमय-परसमय का स्वरूप' बताते हैं –

(हरिगीत)

सद्ज्ञान-दर्शन-चरित-परिणत, जीव ही है स्वसमय।
जो कर्म-पुद्गल के प्रदेशों, में रहें वे परसमय।।२।।

ॐ ह्रीं स्व-परसमयप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।५।।

अब कहते हैं कि 'समय के एकत्व में द्विविधता या बन्ध, शोभनीय नहीं' है –

(हरिगीत)

एकत्व-निश्चयगत समय, सर्वत्र सुन्दर लोक में।
विसंवाद है पर बन्ध की, यह कथा ही एकत्व में।।३।।

ॐ ह्रीं एकत्वनिश्चयगत-समयप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।६।।

अब, दो गाथाओं में 'एकत्व-विभक्त - भगवान आत्मा की अत्यन्त दुर्लभता बताकर, उसी को साक्षात् दिखाने की प्रतिज्ञा' करते हैं –

(हरिगीत)

सबकी सुनी अनुभूत परिचित, भोग बन्धन की कथा।
पर से पृथक् एकत्व की, उपलब्धि केवल सुलभ ना।।४।।

निज विभव से एकत्व ही, दिखला रहा करना मनन।
पर नहीं करना छल-ग्रहण, यदि हो कहीं कुछ स्खलन।।५।।

ॐ ह्रीं एकत्वविभक्तात्मनः दुर्लभत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।७।।

अब, दो गाथाओं में 'भगवान आत्मा का वास्तविक स्वरूप' बताते हैं–

(हरिगीत)

न अप्रमत्त है न प्रमत्त है, बस! एक ज्ञायकभाव है।
इस भाँति कहते शुद्ध, पर जो ज्ञात वह तो वही है।।६।।

दृग-ज्ञान-चारित जीव के हैं – यह कहा व्यवहार से।
ना ज्ञान-दर्शन-चरण ज्ञायक शुद्ध है परमार्थ से ।।७।।

ॐ ह्रीं प्रमत्ताऽप्रमत्तपर्यायभेद-गुणभेदरहित-शुद्धज्ञायकभावप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।८।।

अब, तीन गाथाओं में 'व्यवहारनय की उपयोगिता बताकर, उसका निश्चय-प्रतिपादक-स्वरूप, श्रुतकेवली के उदाहरण' द्वारा समझाते हैं –

(हरिगीत)

अनार्य भाषा के बिना, समझा सकें न अनार्य को।
बस! त्योंहि समझा सकें ना, व्यवहार बिन परमार्थ को।।८।।
श्रुतज्ञान से जो जानते हैं, शुद्ध केवल आतमा।
श्रुतकेवली उनको कहें, ऋषिगण प्रकाशक लोक के ।।९।।
जो सर्वश्रुत को जानते, उनको कहें श्रुतकेवली।
सब ज्ञान ही है आतमा, बस! इसलिए श्रुतकेवली ।।१०।।

ॐ ह्रीं व्यवहारनयस्य परमार्थप्रतिपादकत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।९।।

अब, दो गाथाओं में 'व्यवहार की अभूतार्थता, निश्चय की भूतार्थता और व्यवहार की उपयोगिता कहाँ है, कहाँ नहीं' - यह बताते हैं –

(हरिगीत)

शुद्धनय भूतार्थ है, अभूतार्थ है व्यवहारनय।
भूतार्थ की ही शरण गह, यह आतमा सम्यक् लहे ।।११।।
परमभाव को जो प्राप्त हैं, वे शुद्धनय ज्ञातव्य हैं।
जो रहें अपरमभाव में, व्यवहार से उपदिष्ट हैं ।।१२।।

ॐ ह्रीं निश्चय-व्यवहारयोः भूतार्थ-अभूतार्थत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१०।।

बारहवीं गाथा की टीका केअन्तर्गत आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने निम्न गाथा को सन्दर्भित कर, 'निश्चय-व्यवहारनयों की उपयोगिता' बतलाई है –

(हरिगीत)

यदि चाहते हो जैनदर्शन, प्रवर्त्ताना जगत में।
व्यवहार–निश्चयनयों में से, किसी को छोड़ो नहीं।।
व्यवहारनय बिन तीर्थ का, अर नियतनय बिन तत्त्व का।
ही लोप होगा इसलिए, तुम किसी को छोड़ो नहीं।।

ॐ ह्रीं निश्चय-व्यवहारनयोपयोगिता-प्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।११।।

इस प्रकार बारह गाथाओं में 'समयसार की पीठिका' लिखने के बाद चार कलशों में 'स्याद्वाद एवं निश्चय-व्यवहारनयों का महत्त्व बताकर, आगामी गाथाओं की उत्थानिका भी कलश में ही लिखते हैं' –

(रोला)

उभयनयों में जो विरोध है, उसके नाशक।
स्याद्वादमय जिनवचनों में जो रमते हैं।
मोह–वमन कर अनय–अखण्डित परमज्योतिमय।
स्वयं शीघ्र ही समयसार में वे रमते हैं।।४।।

ॐ ह्रीं श्री स्याद्वादमयी-जिनवाणीभ्यो नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२।।

ज्यों दुर्बल को लाठी है हस्तावलम्ब त्यों।
उपयोगी व्यवहार सभी को अपरमपद में।
पर उपयोगी नहीं रंच भी उन लोगों को।
जो रमते हैं परम–अर्थ चिन्मय चिद्घन में।।५।।

ॐ ह्रीं व्यवहारस्य भूतार्थ-अभूतार्थत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३।।

(हरिगीत)

नियत है जो स्वयं के, एकत्व में नय शुद्ध से।
वह ज्ञान का घनपिण्ड पूरण, पृथक् है परद्रव्य से।।
नव तत्त्व की सन्तति तज बस! एक यह अपनाइए।
इस आतमा का दर्श दर्शन, आतमा ही ध्याइए।।६।।

ॐ ह्रीं शुद्धनयप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४।।

(दोहा)

शुद्धनयाश्रित आतमा, प्रगटे ज्योतिस्वरूप।
नव तत्त्वों में व्याप्त पर, तजे न एक स्वरूप।।७।।

ॐ ह्रीं शुद्धनयाश्रित-प्रत्यग्ज्योतिप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१५।।

अब, 'भूतार्थनय / शुद्धनय से जाने हुए नवतत्त्व ही सम्यग्दर्शन हैं;'- ऐसा विषय-विषयी का अभेद करके बताते हैं -

(हरिगीत)

चिदचिदास्रव पाप-पुण्य, शिव-बन्ध संवर-निर्जरा।
तत्त्वार्थ ये भूतार्थ से, जाने हुए सम्यक्त्व हैं।।१३।।

ॐ ह्रीं नवतत्त्वगत-भूतार्थसम्यग्दर्शनप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१६।।

(रोला)

शुद्ध कनक ज्यों छिपा हुआ है बानभेद में।
नव तत्त्वों में छिपी हुई त्यों आत्मज्योति है।।
एकरूप उद्योतमान पर से विविक्त वह।
अरे भव्यजन! पद-पद पर तुम उसको जानो।।८।।

ॐ ह्रीं विविक्ताऽऽत्मज्योतिप्रकाशक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१७।।

यहाँ, 'आत्मानुभूति की दशा का वर्णन' करते हैं -

(रोला)

निक्षेपों के चक्र विलय, नय नहीं जनमते।
अर प्रमाण के भाव अस्त हो जाते भाई!।।
अधिक कहें क्या, द्वैतभाव भी भासित ना हो।
शुद्ध आतमा का अनुभव होने पर भाई!।।९।।

ॐ ह्रीं अद्वैतात्मानुभूतिप्रकाशक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१८।।

अब, 'शुद्धनय का स्वरूप बताते हुए आगामी गाथा का सूचक कलश' कहते हैं -

(हरिगीत)

परभाव से जो भिन्न है अर, आदि-अन्त विमुक्त है।
संकल्प और विकल्प के, जंजाल से भी मुक्त है।।
जो एक है परिपूर्ण है – ऐसे निजात्मस्वभाव को।
करके प्रकाशित प्रगट होता, है यहाँ यह शुद्धनय।।१०।।

ॐ ह्रीं शुद्धनयस्वरूपप्रकाशक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१९।।

अब, 'शुद्धनय के माध्यम से बद्ध-स्पृष्टादि भावों की अभूतार्थता' बताते हैं –

(हरिगीत)

अबद्धपुट्ठ अनन्य नियत, अविशेष जाने आत्म को।
संयोग–विरहित भी कहे जो, शुद्धनय उसको कहें।।१४।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मस्वरूपप्रकाशक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२०।।

अब, 'बद्ध-स्पृष्टादि भावों की अभूतार्थता बताकर आत्मानुभव की प्रेरणा' देते हैं –

पावें न जिसमें प्रतिष्ठा, बस! तैरते हैं बाह्य में।
ये बद्ध-स्पृष्टादि सब, जिसके न अन्तरभाव में।।
जो है प्रकाशित चतुर्दिक, उस एक आत्मस्वभाव का।
हे जगज्जन! तुम नित्य ही, निर्मोह हो अनुभव करो।।११।।

ॐ ह्रीं आत्मानुभवप्रेरक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२१।।

अब, 'आत्मा को देव संज्ञा से सम्बोधित करते हैं' –

(रोला)

अपने बल से मोह नाशकर भूत-भविष्यत्-।
वर्तमान के कर्म-बन्ध से भिन्न लखे बुध!।।
तो निज अनुभवगम्य आतमा सदा विराजित।
विरहित कर्मकलंकपंक से 'देव' शाश्वत।।१२।।

ॐ ह्रीं कारणपरमात्मस्वरूपप्रकाशक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२२।।

अब, 'आत्मानुभूति को ही ज्ञानानुभूति बताकर, आगामी गाथा की सूचना' देते हैं –

(रोला)

शुद्धनयातम आतम की अनुभूति कही जो।
वह ही है ज्ञानानुभूति तुम यही जानकर।
आतम में आतम को निश्चल थापित करके।
सर्व ओर से एक ज्ञानघन आतम निरखो।।१३।।

ॐ ह्रीं ज्ञानानुभूतिप्रेरक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२३।।

अब, 'आत्मानुभूति करके, आत्मा को देखनेवाला ही सर्व जिनशासन को देखता / जानता है,' यह कहते हैं –

(हरिगीत)

अबद्धपुट्ठ अनन्य अरु, अविशेष जाने आत्म को।
द्रव्य एवं भावश्रुतमय, सकल जिनशासन लहे।।१५।।

ॐ ह्रीं श्री जिनशासनसर्वस्वभूत-शुद्धनयप्रकाशक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२४।।

अब, 'ऐसी अभेद अखण्ड चैतन्यस्वरूप आत्मा ही हमें प्राप्त हो', ऐसा भावना एक कलश में प्रगट करते हैं –

(रोला)

खारेपन से भरी हुई ज्यों नमक डली है।
ज्ञानभाव से भरा हुआ त्यों निज आतम है।।
अन्तर–बाहर प्रगट तेजमय सहज अनाकुल।
जो अखण्ड चिन्मय चिद्घन वह हमें प्राप्त हो।।१४।।

ॐ ह्रीं अखण्डचैतन्याऽऽत्म-स्वरूपप्रकाशक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२५।।

अब, प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि 'परमात्मपद की प्राप्ति हेतु एक आत्मा ही साधने योग्य है' –

(हरिगीत)

है कामना यदि सिद्धि की, ना चित्त को भरमाइये।
यह ज्ञान का घनपिण्ड चिन्मय, आतमा अपनाइये।।
बस! साध्य-साधक भाव से, इस एक को ही ध्याइये।
अर आप भी पर्याय में, परमातमा बन जाइये।।१५।।

ॐ ह्रीं परमात्मपदप्रापयक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२६।।

अब, 'निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय का स्वरूप बताते हुए प्रेरणा' देते हैं –

(हरिगीत)

चारित्र-दर्शन-ज्ञान को, सब साधुजन सेवें सदा।
ये तीन ही हैं आतमा, बस! कहे निश्चयनय सदा।।१६।।

ॐ ह्रीं भेदाऽभेदरत्नत्रयप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि.स्वाहा।।२७।।

अब, आगामी कलशों में यह बताते हैं कि 'दर्शन-ज्ञान-चारित्र और प्रमाण-नय से आत्मा की क्या स्थिति है और हमें क्या करना चाहिए?' –

मेचक कहा है आतमा, दृग-ज्ञान अर आचरण से।
यह एक निज परमातमा, बस! है अमेचक स्वयं से।।
परमाण से मेचक-अमेचक, एक ही क्षण में अहा!।
यह अलौकिक मर्मभेदी, वाक्य जिनवर ने कहा।।१६।।

आतमा है एक यद्यपि, किन्तु नय-व्यवहार से।
त्रैरूपता धारण करे, सद्-ज्ञान-दर्शन-चरण से।।
बस! इसलिए मेचक कहा है, आतमा जिनमार्ग में।
अर इसे जाने बिन जगत् जन, ना लगें सन्मार्ग में।।१७।।

आतमा मेचक कहा है, यद्यपि व्यवहार से।
किन्तु वह मेचक नहीं है, अमेचक परमार्थ से।।
है प्रगट ज्ञायक ज्योतिमय, वह एक है भूतार्थ से।
है शुद्ध एकाकार, पर से भिन्न है, परमार्थ से।।१८।।

मेचक-अमेचक आतमा के, चिन्तवन से लाभ क्या?।
बस करो अब तो इन विकल्पों से तुम्हें है साध्य क्या?।।
हो साध्य-सिद्धि एक बस! सद्-ज्ञान-दर्शन-चरण से।
पथ अन्य कोई है नहीं, जिससे बचे संसरण से।।१९।।

ॐ ह्रीं दर्शनज्ञानचारित्र-भेदाऽभेदप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२८।।

अब, दो गाथाओं में 'उदाहरण सहित रत्नत्रय धारण करने की प्रेरणा' देते हैं –

(हरिगीत)

'यह नृपति है' – यह जानकर, अर्थार्थिजन श्रद्धा करें।
अनुचरण उसका ही करें, अति प्रीति से सेवा करें।।१७।।
यदि मोक्ष की है कामना, तो जीव-नृप को जानिए।
अति प्रीति से अनुचरण करिए, प्रीति से पहिचानिए।।१८।।

ॐ ह्रीं मोक्षोपायप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२९।।

अब, 'रत्नत्रय में भी एकता स्थापित करते हुए कलश' कहते हैं –

त्रैरूपता को प्राप्त है पर, ना तजे एकत्व को।
यह शुद्ध निर्मल आत्म-ज्योति, प्राप्त है जो स्वयं को।।
अनुभव करें हम सतत ही, चैतन्यमय उस ज्योति का।
क्योंकि उसके बिना जग में, साध्य की हो सिद्धि ना।।२०।।[१]

ॐ ह्रीं अभेदात्मानुभवप्रेरक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३०।।

अब, 'यह आत्मा, कब तक अज्ञानी – अप्रतिबुद्ध रहता है?' यह मूल गाथा द्वारा बताते हैं –

(हरिगीत)

मैं कर्म हूँ नोकर्म हूँ या, हैं हमारे ये सभी।
यह मान्यता जब तक रहे, अज्ञानी हैं तब तक सभी।।१९।।

ॐ ह्रीं अज्ञानस्वरूपप्रतिपादक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३१।।

अब, 'भेदज्ञानमूलक आत्मानुभूति को किसी भी प्रकार से प्राप्त करने की प्रेरणा' देते हैं –

(रोला)

जैसे भी हो स्वतः अन्य के उपदेशों से।
भेदज्ञानमूलक अविचल अनुभूति हुई हो।।
ज्ञेयों के अगणित प्रतिबिम्बों से वे ज्ञानी।
अरे निरन्तर दर्पणवत् रहते अविकारी।।२१।।

ॐ ह्रीं भेदज्ञानमूलकात्मानुभूतिप्रेरक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३२।।

अब, 'अज्ञानी की पहचान बतानेवाले विकल्पों को चिह्नित करते हैं'–

(हरिगीत)

सचित्त और अचित्त एवं, मिश्र सब परद्रव्य ये।
हैं मेरे ये मैं इनका हूँ, ये मैं हूँ या मैं हूँ वे ही ।।२० ।।
हम थे सभी के, या हमारे थे सभी, गत काल में।
हम होंयेंगे उनके, हमारे वे अनागत काल में ।।२१ ।।
ऐसी असम्भव कल्पनाएँ, मूढ़जन नित ही करें।
भूतार्थ-जाननहार जन, ऐसे विकल्प नहीं करें।।२२।।

ॐ ह्रीं अप्रतिबुद्धलक्षणप्रतिपादक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३३।।

अब, 'अनादिकालीन मोह को तत्काल छोड़ने की प्रेरणा' देते हैं –

(हरिगीत)

आजन्म के इस मोह को हे जगत् जन! तुम छोड़ दो।
अर रसिकजन को जो रुचे, उस ज्ञान के रस को चखो।।
तादात्म्य पर के साथ जिनका, कभी भी होता नहीं।
अर स्वयं का ही स्वयं से, अन्यत्व भी होता नहीं।।२२।।

ॐ ह्रीं मोहनाशप्रेरक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।३४।।

अब, तीन गाथाओं के द्वारा 'आचार्य कुन्दकुन्ददेव, स्वयं सर्वज्ञज्ञान का उल्लेख करते हुए अप्रतिबुद्ध को समझाने का प्रयत्न' करते हैं –

(हरिगीत)

अज्ञान-मोहित-मती बहुविध, भाव से संयुक्त जिय।
अबद्ध एवं बद्ध पुद्‌गल, द्रव्य को अपना कहे।।२३।।
सर्वज्ञ ने देखा सदा, उपयोग लक्षण जीव यह।
पुद्‌गलमयी हो किसतरह, किसतरह तू अपना कहे?।।२४।।
जीवमय पुद्‌गल तथा, पुद्‌गलमयी हो जीव जब।
'ये मेरे पुद्‌गलद्रव्य हैं'– यह कहा जा सकता है तब।।२५।।

ॐ ह्रीं अप्रतिबुद्धबोधक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३५।।

अब, 'किसी भी प्रकार से निजात्मतत्त्व का कौतूहली बनने हेतु शरीर के साथ पडौसी जैसा व्यवहार करने की प्रेरणा देते हैं' –

(हरिगीत)

निजतत्त्व का कौतूहली अर, पड़ौसी बन देह का।
हे आत्मन्! जैसे बने, अनुभव करो निजतत्त्व का।।
जब भिन्न पर से सुशोभित लख, स्वयं को तब शीघ्र ही।
तुम छोड़ दोगे देह से, एकत्व के इस मोह को।।२३।।

ॐ ह्रीं आत्मानुभवप्रेरक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३६।।

अब यहाँ 'अप्रतिबुद्ध, व्यवहार-स्तुति के माध्यम से अपना पक्ष रखता है और टीकाकार उसे समझाने हेतु उदाहरण प्रस्तुत करते हैं –

(हरिगीत)

यदि देह ना हो जीव तो, तीर्थंकरों का स्तवन।
सब असत् होगा इसलिए, बस! देह ही है आतमा।।२६।।

(हरिगीत)

लोक-मानस रूप से, रवि-तेज अपने तेज से।
जो हरें निर्मल करें दश-दिश, कान्तिमय तन-तेज से।।
जो दिव्यध्वनि से भव्यजन, के कान में अमृत भरें।
उन सहस अठ लक्षण सहित, जिन-सूरि को वन्दन करें।।२४।।

ॐ ह्रीं व्यवहारस्तुतिपोषक-पूर्वपक्षप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३७।।

अब, चार गाथाओं में 'अप्रतिबुद्ध की शंका का समाधान, नय-विभाग से करते हैं' -

(हरिगीत)

'देह-चेतन एक हैं' - यह वचन है व्यवहार का।
'ये एक हो सकते नहीं'- यह कथन है परमार्थ का।।२७।।

इस आतमा से भिन्न पुद्गल, रचित तन का स्तवन।
कर मानना कि हो गया है, केवली का स्तवन।।२८।।

परमार्थ से सत्यार्थ ना, वह केवली का स्तवन।
केवलि-गुणों का स्तवन ही, केवली का स्तवन।।२९।।

वर्णन नहीं है नगरपति का, नगर-वर्णन जिस तरह।
केवली-वन्दन नहीं है, देह-वन्दन उस तरह।।३०।।

ॐ ह्रीं व्यवहारस्तुतिप्रतिषेधक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३८।।

अब, 'पूर्व गाथा में कथित नगर-वर्णन एवं जिनेन्द्र-वर्णन के सम्बन्ध में उदाहरण-स्वरूप दो कलश' कहते हैं -

(हरिगीत)

प्राकार से कवलित किया, जिस नगर ने आकाश को।
अर गोल गहरी खाई से है, पी लिया पाताल को।।
सब भूमितल को ग्रस लिया, उपवनों के सौन्दर्य से।
अद्भुत अनूपम अलग ही है, वह नगर संसार से।।२५।।

गम्भीर सागर के समान, महान मानस मंग हैं।
नित्य निर्मल निर्विकारी, सुव्यवस्थित अंग हैं।।
सहज ही अद्भुत अनूपम, अपूरव लावण्य है।
क्षोभ-विरहित अर अचल, जयवन्त जिनवर अंग है।।२६।।

ॐ ह्रीं व्यवहारस्तुतिसमर्थक-दृष्टान्तप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।।३९।।

अब, आचार्यदेव, तीन गाथाओं में 'ज्ञेय-ज्ञायक संकरदोष, भाव्य-भावक संकर दोष का परिहार एवं भाव्य-भावकभाव का अभाव करके, प्रगट होनेवाली तीन प्रकार की निश्चय स्तुति का स्वरूप' बताते हैं –

(हरिगीत)

जो इन्द्रियों को जीत जाने, ज्ञानमय निज आतमा।
वे हैं जितेन्द्रिय जिन कहें, परमार्थ-साधक आतमा।।३१।।

मोह को जो जीत जाने, ज्ञानमय निज आतमा।
जितमोह जिन उनको कहें, परमार्थ-ज्ञायक आतमा।।३२।।

सब मोह-क्षय हो जाय जब, जितमोह सम्यक्श्रमण का।
तब क्षीणमोही जिन कहें, परमार्थ-ज्ञायक आतमा।।३३।।

ॐ ह्रीं निश्चयस्तुतिस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।४०।।

अब, दो कलशों में 'व्यवहार-निश्चय स्तुति' के इस प्रकरण का उपसंहार करते हैं –

(हरिगीत)

इस आतमा अर देह का, एकत्व बस! व्यवहार से।
यह शरीराश्रित स्तवन भी, इसलिए व्यवहार से।।
परमार्थ से स्तवन है, चिद्भाव का ही अनुभवन।
परमार्थ से तो भिन्न ही हैं, देह अर चैतन्यघन।।२७।।

इस आतमा अर देह के, एकत्व को नय-युक्ति से।
निर्मूल ही जब कर दिया, तत्त्वज्ञ मुनिवरदेव ने।।
यदि भावना है भव्य तो फिर, क्यों नहीं सद्बोध हो।
भावोल्लसित आत्मार्थियों को, नियम से सद्बोध हो।।२८।।

ॐ ह्रीं व्यवहार-निश्चयस्तुति-प्रकरणोपसंहारक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४१।।

अब, दो गाथाओं एवं एक कलश में 'सम्यग्ज्ञान ही प्रत्याख्यान है' यह सोदाहरण समझाते हैं –

(हरिगीत)

परभाव को पर जानकर, परित्याग उनका जब करे।
तब त्याग हो बस! इसलिए ही, ज्ञान प्रत्याख्यान है।।३४।।
जिस तरह कोई पुरुष, 'पर' यह जानकर, 'पर' परित्यजे।
बस! उस तरह 'पर' जानकर, परभाव ज्ञानी परित्यजे।।३५।।

(हरिगीत)

परभाव के परित्याग की, दृष्टि पुरानी न पड़े।
अर जब तलक हे आत्मन्! वृत्ति न हो अतिबलवती।।
व्यतिरिक्त जो परभाव से, वह आतमा अतिशीघ्र ही।
अनुभूति में उतरा अरे! चैतन्यमय वह स्वयं ही।।२९।।[१]

ॐ ह्रीं निश्चयप्रत्याख्यानप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४२।।

अब, एक गाथा एवं एक कलश के द्वारा 'पौद्गलिक मोहादि भावकभावरूप परभावों से भेदज्ञान कराने की विधि का प्रयोग' कराते हैं –

(हरिगीत)

मोहादि मेरे कुछ नहीं मैं एक हूँ उपयोगमय।
है मोह-निर्ममता यही वे कहें जो जानें समय।।३६।।

(हरिगीत)

सब ओर से चैतन्यमय, निजभाव से भरपूर हूँ।
मैं स्वयं ही इस लोक में, निजभाव का अनुभव करूँ।।
यह मोह मेरा कुछ नहीं, चैतन्य का घनपिण्ड हूँ।
हूँ शुद्ध चिद्घन महानिधि मैं, स्वयं एक अखण्ड हूँ।।३०।।

ॐ ह्रीं भावकभावभेदज्ञानप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४३।।

अब, एक गाथा के द्वारा 'धर्मादि ज्ञेयरूप परभावों से भेदज्ञान कराने की विधि का प्रयोग' कराते हैं –

(हरिगीत)

धर्मादि मेरे कुछ नहीं मैं एक हूँ उपयोगमय।
है धर्म-निर्ममता यही वे कहें जो जानें समय।।३७।।

ॐ ह्रीं ज्ञेयभावभेदज्ञानप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४४।।

अब यहाँ, 'भेदज्ञान के फलस्वरूप प्राप्त होनेवाली आत्मानुभूति की प्रशंसा' करते हैं –

(हरिगीत)

बस! इस तरह सब अन्य भावों, से हुई जब भिन्नता।
तब स्वयं को उपयोग ने, स्वयमेव ही धारण किया।।[२]

प्रकटित हुआ परमार्थ अर, दृग-ज्ञान-वृत परिणत हुआ।
तब आतमा के बाग में, आतम रमण करने लगा।।३१।।

ॐ ह्रीं श्री भेदज्ञानफलप्ररूपक-श्रीसमयसारायनमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४५।।

अब, 'आत्मानुभूति में होनेवाले आत्म-संचेतन का स्वरूप' बताते हैं –

(हरिगीत)

मैं एक दर्शन-ज्ञानमय नित, शुद्ध हूँ रूपी नहीं।
ये अन्य सब परद्रव्य किंचित्, मात्र भी मेरे नहीं।।३८।।

ॐ ह्रीं आत्मस्वरूपसंचेतनप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः निर्वपामीति अर्घ्यं स्वाहा।।४६।।

यहाँ, 'समस्त जगत् को भी ज्ञान-समुद्र भगवान आत्मा में स्नान करने की प्रेरणा देते हुए 'पूर्वरंग' का समापन' करते हैं –

(हरिगीत)

सुख-शान्तरस से लबालब यह, ज्ञानसागर आतमा।
विभरम की चादर हटा, सर्वांग परगट आतमा।।
हे भव्यजन! इस लोक के, सब एक साथ नहाइये।
अर इसे ही अपनाइये, इसमें मगन हो जाइये।।३२।।[१]

ॐ ह्रीं स्वरूपसंचेतनप्रेरक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४७।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अर्घ्यावली

।। जीव-अजीव अधिकार ।।

(दोहा)

वर्णादि रागादि से है यह आतम भिन्न।
शुद्ध-बुद्ध-चैतन्यमय और अखण्ड अनन्य।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

इस अधिकार के प्रारम्भ में सर्वप्रथम आचार्य अमृतचन्द्रदेव, आत्मख्याति टीका में 'जीव और अजीव को रंगमंच पर एकरूप में प्रस्तुत करके उस ज्ञान की महिमा करते हैं, जो जीव-अजीव का भेद जान लेता हैं' –

(सवैया इकतीसा)

जीव और अजीव के विवेक से है पुष्ट जो,
ऐसी दृष्टि द्वारा इस नाटक को देखता।
अन्य जो सभासद हैं उन्हें भी दिखाता और,
दुष्ट अष्ट कर्मों के बन्धन को तोड़ता।।

जाने लोकालोक को पै निज में मगन रहे,
विकसित शुद्ध नित्य निज अवलोकता।
ऐसो ज्ञानवीर धीर मंग भरे मन में,
स्वयं ही उदात्त और अनाकुल सुशोभता।।३३।।

ॐ ह्रीं जीवाऽजीवभेदज्ञापक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४८।।

यहाँ सर्वप्रथम 'मूढ़ अज्ञानी जीव की, आत्मा के सम्बन्ध में आठ मिथ्या मान्यताओं का निषेध करने के उद्देश्य से, उनका वर्णन' पाँच गाथाओं में करते हैं –

(हरिगीत)

परात्मवादी मूढ़जन, निज आतमा जानें नहीं।
अध्यवसान को आतम कहें, या कर्म को आतम कहें।।३९।।

अध्यवसानगत जो तीव्रता, या मन्दता वह जीव है।
पर अन्य कोई यह कहे, नोकर्म ही बस! जीव है।।४०।।

मन्द अथवा तीव्रतम जो, कर्म का अनुभाग है;
वह जीव है या कर्म का जो उदय है वह जीव है।।४१।।

द्रव्यकर्म का अर जीव का, सम्मिलन ही बस जीव है।
अथवा कहे कोइ करम का, संयोग ही बस! जीव है।।४२।।

बस! इसतरह दुर्बुद्धिजन, पर-वस्तु को आतम कहें।
परमार्थवादी वे नहीं, परमार्थवादी यह कहें।।४३।।
मैं एक दर्शन-ज्ञानमय नित, शुद्ध हूँ रूपी नहीं।
ये अन्य सब परद्रव्य किंचित्, मात्र भी मेरे नहीं।।टेक।।

ॐ ह्रीं पराऽत्मवादी-प्रतिषेधक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४९।।

अब, दो गाथाओं में उक्त 'आठ मान्यताओं का खण्डन करते हुए अध्यवसानादि भावों को पौद्गलिक बताते हैं' –

(हरिगीत)

ये भाव सब पुद्गल-दरव-परिणाम से निष्पन्न हैं।
यह कहा है जिनदेव ने 'ये जीव हैं' कैसे कहें?।।४४।।

अष्टविध सब कर्म, पुद्गलमय कहे जिनदेव ने।
सब कर्म का परिणाम, दुःखमय यह कहा जिनदेव ने।।४५।।

ॐ ह्रीं अध्यवसानादिभावान् पुद्गलप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।५०।।

यहाँ, आचार्यदेव 'छह माह तक निरन्तर आत्मानुभव का अभ्यास पर उसकी प्राप्ति होना सुनिश्चित करते हुए उसकी प्रेरणा' करते हैं –

(हरिगीत)

हे भव्यजन! क्या लाभ है, इस व्यर्थ के बकवाद से।
अब तो रुको निज को लखो,अध्यात्म के अभ्यास से।।
यदि अनवरत छह मास हो, निज आतमा की साधना।
तो आतमा की प्राप्ति हो, सन्देह इसमें रंच ना।।३४।।

ॐ ह्रीं आत्मानुभवाभ्यासप्रेरक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।५१।।

अब, 'अध्यवसानादि भावों को व्यवहार से जीव कह सकते हैं' – ऐसा सोदाहरण तीन गाथाओं में कहते हैं –

(हरिगीत)

ये भाव सब हैं जीव के, जो यह कहा जिनदेव ने।
व्यवहारनय का पक्ष यह, प्रस्तुत किया जिनदेव ने।।४६।।

सेना सहित नरपती निकले, 'नृप चला' ज्यों जन कहें।
– यह कथन है व्यवहार का, पर नृपति उनमें एक है।।४७।।

बस! उसतरह ही सूत्र में, व्यवहार से इन सभी को।
जीव कहते किन्तु इनमें, जीव तो बस! एक है।।४८।।

ॐ ह्रीं व्यवहारजीवप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।५२।।

अब, जीव का वास्तविक स्वरूप, पंच परमागमों एवं जिनागम में अन्यत्र भी समागत 'अलिंगग्रहण' की सुप्रसिद्ध गाथा के द्वारा बताते हैं –

(हरिगीत)

चैतन्य गुणमय आतमा, अव्यक्त अरस अरूप है।
जानो अलिंगग्रहण इसे, यह अनिर्दिष्ट अशब्द है।।४९।।

ॐ ह्रीं परमार्थजीवप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।५३।।

अब, 'भगवान आत्मा के अनुभव की प्रेरणा' एक कलश में देते हैं –

(हरिगीत)

चैतन्यशक्ति से रहित, परभाव सब परिहार कर।
चैतन्यशक्ति से सहित, निजभाव नित अवगाह कर।।
है श्रेष्ठतम जो विश्व में, सुन्दर सहज शुद्धात्मा।
अब उसी का अनुभव करो तुम, स्वयं हे भव्यातमा! ।।३५।।

ॐ ह्रीं आत्मानुभवप्रेरक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।५४।।

अब, 'परमार्थ जीव से भिन्न, उनतीस भावों की पौद्‌गलिकता' को दो कलशों एवं छह गाथाओं द्वारा बताते करते हैं –

(दोहा)

चित् शक्ति सर्वस्व जिन, केवल वह है जीव।
उसे छोड़कर और सब, पुद्‌गलमयी अजीव।।३६।।

(हरिगीत)

शुद्ध जीव के रस-गन्ध ना, अर वर्ण ना स्पर्श ना।
यह देह ना जड़रूप ना, संस्थान ना संहनन ना।।५०।।

ना राग है ना द्वेष है, ना मोह है इस जीव के।
प्रत्यय नहीं है कर्म ना, नोकर्म ना इस जीव के।।५१।।

ना वर्ग है ना वर्गणा, अर कोई स्पर्धक नहीं।
अर नहीं हैं अनुभाग के, अध्यात्म के स्थान भी।।५२।।

योग के स्थान नहिं, अर बन्ध के स्थान ना।
उदय के स्थान नहिं, अर मार्गणास्थान ना।।५३।।

थितिबन्ध के स्थान नहिं, संक्लेश के स्थान ना।
संयमलब्धि के स्थान ना, सुविशुद्धि के स्थान ना।।५४।।

जीव के स्थान नहिं, गुणथान के स्थान ना।
क्योंकि ये सब भाव पुद्गल - द्रव्य के परिणाम हैं।।५५।।

(दोहा)

वर्णादिक रागादि सब, हैं आतम से भिन्न।
अन्तर्दृष्टि देखिये, दिखे एक चैतन्य।।३७।।[१]

ॐ ह्रीं वर्णादिगुणस्थानपर्यन्तभावान् पुद्गलप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।५५।।

अब, 'निश्चय-व्यवहार दोनों नयों का एक साथ प्रतिपादन' करते हैं –

(हरिगीत) *1*

वर्णादि को व्यवहार से ही, कहा जाता जीव के।
परमार्थ से ये भाव भी, होते नहीं हैं जीव के।।५६।।

दूध-पानी की तरह, सम्बन्ध इनका जानना।
उपयोगमय इस जीव के, परमार्थ से ये हैं नहीं।।५७।।

पथिक लुटते देखकर, पथ लुट रहा जग-जन कहें।
पर पथ तो लुटता है नहीं, बस! पथिक ही लुटते रहें।।५८।।

उस ही तरह रंग देख कर, जड़कर्म अर नोकर्म का।
जिनवर कहें व्यवहार से, यह वर्ण है इस जीव का।।५९।।

इस ही तरह रस-गन्ध-तन-संस्थान आदिक जीव के।
व्यवहार से हैं – कहें वे, जो जानते परमार्थ को।।६०।।

ॐ ह्रीं व्यवहारजीवप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।५६।।

अब, 'जीव का वर्णादि भावों के साथ तादात्म्यलक्षण सम्बन्ध क्यों नहीं है? - यह बताते हैं –

(हरिगीत)

जो जीव हैं संसार में, वर्णादि उनके ही कहे।
जो मुक्त हैं संसार से, वर्णादि उनके हैं नहीं।।६१।।

वर्णादिमय ही जीव है, तुम यदी मानो इस तरह।
तब जीव और अजीव में, अन्तर करोगे किस तरह?।।६२।।

मानो उन्हें वर्णादिमय, जो जीव हैं संसार में।
तब जीव संसारी सभी, वर्णादिमय हो जायेंगे।।६३।।

यदि लक्षणों की एकता से, जीव हों पुद्गल सभी।
बस! इस तरह तो सिद्ध होंगे, सिद्ध भी पुद्गलमयी।।६४।।

एकेन्द्रियादिक प्रकृति हैं, जो नाम नामक कर्म की।
पर्याप्तकेतर आदि एवं, सूक्ष्म-बादर आदि सब।।६५।।

इनकी अपेक्षा कहे जाते, जीव के स्थान जो।
कैसे कहें - 'वे जीव हैं', जब प्रकृतियाँ पुद्गलमयी।।६६।।

(दोहा)

जिस वस्तु से जो बने, वह हो वही न अन्य।
स्वर्ण-म्यान तो स्वर्ण है, असि है उससे अन्य।।३८।।

वर्णादिक जो भाव हैं, वे सब पुद्गल जन्य।
एक शुद्ध विज्ञानघन, आतम इनसे भिन्न।।३९।।[1]

ॐ ह्रीं वर्णादितादात्म्यनिषेधक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।५७।।

अब, 'उपसंहार में पुनः निश्चय-व्यवहार से जीव-अजीव का स्वरूप बताते हैं' –

(हरिगीत)

पर्याप्तकेतर आदि एवं, सूक्ष्म–बादर आदि सब।
जड़ देह की है 'जीव' संज्ञा, सूत्र में व्यवहार से।।६७।।
मोहन–करम के उदय से, गुणथान जो जिनवर कहे।
वे जीव कैसे हो सकें? जो नित अचेतन ही कहे।।६८।।

(दोहा)

कहने से घी का घड़ा, घड़ा न घीमय होय।
कहने से वर्णादिमय, जीव न तन्मय होय।।४०।।
स्वानुभूति में जो प्रगट, अचल अनादि अनन्त।
स्वयं जीव चैतन्यमय, जगमगात अत्यन्त।।४१।।[1]

ॐ ह्रीं व्यवहारनिश्चयप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि.स्वाहा।।५८।।

अब, आगामी कलशों में 'जीव-अजीव को लक्षणों से जानकर भेदज्ञान करने की प्रेरणा देते हुए इस अधिकार का उपसंहार' करते हैं –

(सवैया इकतीसा)

मूर्तिक–अमूर्तिक अजीव द्रव्य दो प्रकार,
इसलिए अमूर्तिक लक्षण न बन सके।
सोचकर विचारकर भलीभाँति ज्ञानियों ने,
कहा वह निर्दोष लक्षण जो बन सके।
अतिव्याप्ति–अव्याप्ति दोषों से विरहित,
चैतन्यमय उपयोग लक्षण है जीव का।
अत: अवलम्ब लो अविलम्ब इसका ही,
क्योंकि यह भाव ही है जीवन इस जीव का।।४२।।

(हरिगीत)

निज लक्षणों की भिन्नता से, जीव और अजीव को।
जब स्वयं से ही ज्ञानिजन, भिन्न–भिन्न ही हैं जानते।।

जग में पड़े अज्ञानियों का, अमर्यादित मोह यह।
अरे! तब भी नाचता क्यों? खेद है आश्चर्य है।।४३।।

अरे! काल अनादि से, अविवेक के इस नृत्य में।
बस! एक पुद्गल नाचता, चेतन नहीं इस कृत्य में।।
यह जीव तो पुद्गलमयी, रागादि से भी भिन्न है।
आनन्दमय चिद्भाव तो, दृग-ज्ञानमय चैतन्य है।।४४।।[1]

जब इस तरह धारा-प्रवाही, ज्ञान का आरा चला।
तब जीव और अजीव में, अतिविकट विघटन हो चला।।
अब जब तलक हों भिन्न, जीव-अजीव उसके पूर्व ही।
यह ज्ञान का घनपिण्ड निज, ज्ञायक प्रकाशित हो उठा।।४५।।[2]

ॐ ह्रीं जीवाजीवभेदज्ञानप्रेरक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।५९।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

जयमाला

(दोहा)

सुनो भव्य! अधिकार की, महिमा अपरम्पार।
इसमें सब कुछ आ गया, जिनवाणी का सार।।१।।

जीवाजीव-अधिकार की, पूजन की सानन्द।
जयमाला में जान लो, विषय-वस्तु आनन्द।। २।।

(हरिगीत)

वर्णादि अर रागादि जड़ से, आतमा की भिन्नता।
का विशद वर्णन किया है रे! इस प्रथम अधिकार में।।
वर्णादि अर रागादि से, एकत्व और ममत्व को।
छोड़ने को कहा है रे! युक्ति से विस्तार से।।३।।

वर्णादि अर रागादि में, एकत्व रे! जब तक रहे।
अज्ञानी मिथ्यादृष्टि यह जिय, नियम से तब तक रहे।।
स्वयं में एकत्व, पर से भिन्नता, की बात को।
युक्ति से समझा रहे हैं, आतमा की बात को।।४।।

न प्रमत्त है नाऽप्रमत्त है, न ज्ञान-दर्शन-चरित है।
न बँधा है न छुआ है, अविशेष और अनन्य है।।
संयोग विरहित एक ज्ञायकभाव आतम जानिये।
भूतार्थ है परमार्थ उसकी शुद्धता पहिचानिये।।५।।

धर्मादि ज्ञेयों से तथा, रागादि भावक-भाव से।
निज आतमा की भिन्नता को जानिये निजभाव से।।
जीव के रस-गन्ध ना, ना रूप है ना शब्द है।
चेतना गुणवान आतम, अरे! पूर्ण पवित्र है।।६।।

वर्णादि से गुणथान तक, कोई नहीं इस जीव के।
ज्ञान-दर्शन जीव के, वर्णादि सभी अजीव के।।
यदि चाहते हो आतमा, तो स्वयं को पहिचानिये।
स्वयं में रम जाइये अर, स्वयं में जम जाइये।।७।।

(दोहा)

भविजन! जीवाजीव में, करो भेद-विज्ञान।
फिर गहराई से करो, आतम की पहिचान।।८।।

ॐ ह्रीं जीवाऽजीवतत्त्वप्रतिपादक-पूर्वरंग-जीवाऽजीवाधिकार-समन्वित-श्रीसमयसाराय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

जीवाजीवाधिकार में, है आतम की बात।
एक आतमा जानिये, छोड़ जगत् की आश।।९।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

३

कर्ता-कर्म अधिकार पूजन

स्थापना

(हरिगीत)

वर्णादि अर रागादि का, कर्ता नहीं है आतमा।
वर्णादि अर रागादि का, भोक्ता नहीं है आतमा।।
कर्ता नहीं भोक्ता नहीं, स्वामी नहीं यह आतमा।
किसी से लेता नहीं, देता नहीं कुछ आतमा।।१।।

(दोहा)

आतम आतमभाव का, कर्ता-भोक्ता होय।
स्व-स्वामी सम्बन्ध भी, अपने में ही होय।।२।।

ॐ ह्रीं कर्ताकर्मस्वरूपप्रतिपादक-श्रीकर्ताकर्माधिकार! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं कर्ताकर्मस्वरूपप्रतिपादक-श्रीकर्ताकर्माधिकार! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं कर्ताकर्मस्वरूपप्रतिपादक-श्रीकर्ताकर्माधिकार! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्। (इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(अवतार)

जल

उज्ज्वल जल परम पवित्र, मल परिहारक है।
निज के निर्मल परिणाम, आत्म-उद्धारक हैं।।
कर्ता-भोक्ता की बात, निज की निज में है।
पर से न कोई सम्बन्ध, अपन अपने में हैं।।

ॐ ह्रीं कर्ताकर्मस्वरूपप्रतिपादक-श्रीकर्ताकर्माधिकाराय जन्म-जरा-मत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

चन्दन-सम शीतल शान्त, आतम है मेरा।
अचल अनादि-अनन्त, आतम है मेरा।।
कर्ता-भोक्ता की बात, निज की निज में है।
पर से न कोई सम्बन्ध, अपन अपने में हैं।।

ॐ ह्रीं कर्ता-कर्मस्वरूपप्रतिपादक-श्रीकर्ताकर्माधिकाराय संसार-ताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत

निज अक्षत अमल अखण्ड, न पर से खण्डित है।
अपनी महिमा से आप, पूर्णतः मण्डित है।।
कर्ता-भोक्ता की बात, निज की निज में है।
पर से न कोई सम्बन्ध, अपन अपने में हैं।।

ॐ ह्रीं कर्ताकर्मस्वरूपप्रतिपादक-श्रीकर्ताकर्माधिकाराय अक्षय-पद-प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

सुमन सुमन से आज, मन मोहित करते।
निर्मल आतम गुणगान, मृदु मन को हरते।।
कर्ता-भोक्ता की बात, निज की निज में है।
पर से न कोई सम्बन्ध, अपन अपने में हैं।।

ॐ ह्रीं कर्ताकर्मस्वरूपप्रतिपादक-श्रीकर्ताकर्माधिकाराय काम-बाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नैवेद्य

मन-मोहक मृदु मिष्ठान्न, मधुर महिमा मण्डित।
सर्वांग सरस मिष्ठान्न, करते आकर्षित।।
कर्ता-भोक्ता की बात, निज की निज में है।
पर से न कोई सम्बन्ध, अपन अपने में हैं।।

ॐ ह्रीं कर्ताकर्मस्वरूपप्रतिपादक-श्रीकर्ताकर्माधिकाराय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप

मनहर तमहर परकाश, स्व-पर प्रकाशक है।
सद्ज्ञान प्रतीक प्रदीप, विभरमतम नाशक है।।
कर्ता-भोक्ता की बात, निज की निज में है।
पर से न कोई सम्बन्ध, अपन अपने में हैं।।

ॐ ह्रीं कर्ताकर्मस्वरूपप्रतिपादक-श्रीकर्ताकर्माधिकाराय मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप

यह आतम अलख अनूप, धूम दश धर्मों की।
रे! धर्मध्यान की धूप, दाहक कर्मों की।।
कर्ता-भोक्ता की बात, निज की निज में है।
पर से न कोई सम्बन्ध, अपन अपने में हैं।।

ॐ ह्रीं कर्ताकर्मस्वरूपप्रतिपादक-श्रीकर्ताकर्माधिकाराय अष्ट-कर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

माया ममता को छोड़, अरे! मन को हर लो।
कर फल से पूजा आज, जनम सफल कर लो।।
कर्ता-भोक्ता की बात, निज की निज में है।
पर से न कोई सम्बन्ध, अपन अपने में हैं।।

ॐ ह्रीं कर्ताकर्मस्वरूपप्रतिपादक-श्रीकर्ताकर्माधिकाराय मोक्ष-फल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

जल से फल तक सब अर्घ्य, चढ़ाओ बलिहारी।
अन-अर्घ्य परमपद प्राप्त, करने की बारी।।
कर्ता-भोक्ता की बात, निज की निज में है।
पर से न कोई सम्बन्ध, अपन अपने में हैं।।

ॐ ह्रीं कर्ताकर्मस्वरूपप्रतिपादक-श्रीकर्ताकर्माधिकाराय अनर्घ्य-पद-प्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा। (इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अर्घ्यावली

(दोहा)

मैं कर्ता हूँ कर्म का, कर्म है मेरा कर्म।
ऐसी मिथ्या मान्यता, है मिथ्यात्व अधर्म।।
निज आतम तल्लीनता, सुखमय आतमधर्म।
श्री जिन जिनवरदेव ने, यह समझाया मर्म।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

यहाँ आचार्य अमृतचन्द्रदेव कहते हैं कि अब, 'जीव-अजीव ही कर्ता-कर्म के वेश में रंगभूमि में प्रवेश करते हैं' और वहाँ 'जीव (अज्ञानी) कहता है कि मैं (जीव) कर्ता हूँ और क्रोधादि (अजीव) मेरे कर्म हैं।' ज्ञानियों को इस 'कर्ता-कर्म सम्बन्धी अज्ञान का शमन करनेवाली ज्ञान-ज्योति' प्रगट होती है, अतः उस ज्ञान-ज्योति की महिमा करते हुए आचार्य अमृतचन्द्रदेव, कलश द्वारा इस अधिकार का मंगलाचरण करते हैं –

(हरिगीत)

मैं एक कर्ता आत्मा, क्रोधादि मेरे कर्म सब।
है यही कर्ता-कर्म की, दुष्प्रवृत्ति है अज्ञानमय।।
शमन करती इसे प्रगटी, सर्व विश्व-विकाशनी।
अतिधीर परमोदात्त पावन, ज्ञानज्योति-प्रकाशनी।।४६।।

ॐ ह्रीं कर्तृकर्माऽज्ञाननिवारक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।६०।।

यहाँ आगामी दो गाथाओं में 'आत्मा और आस्रव में विशेष अन्तर न जानने को क्रोधादि एवं कर्मबन्ध का कारण' कहते हैं –

(हरिगीत)

आतमा अर आस्रवों में, भेद जब जाने नहीं।
हैं अज्ञ तबतक जीव सब, क्रोधादि में वर्तन करें।। ६९।।
क्रोधादि में वर्तन करें तब, कर्म का संचय करें।
हो कर्म-बन्धन इस तरह, इस जीव को जिनवर कहें।।७०।।

ॐ ह्रीं कर्मबन्धनकारणप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।६१।।

अब, दो गाथाओं और एक कलश के द्वारा 'आत्मा और आस्रवों के बीच होनेवाले भेदज्ञान को बन्ध के निरोध का कारण' बताते हैं –

(हरिगीत)

आतमा अर आस्रवों में, भेद जाने जीव जब।
जिनदेव ने ऐसा कहा, कि नहीं होवे बन्ध तब।।७१।।

इन आस्रवों की अशुचिता, विपरीतता को जानकर।
आतम करे उनसे निवर्तन, दु:ख कारण मानकर।।७२।।

(हरिगीत)

पर-परिणति को छोड़ती अर, तोड़ती सब भेद-भ्रम।
यह अखण्ड प्रचण्ड प्रगटित, हुई पावन-ज्योति जब।।

अज्ञानमय इस प्रवृत्ति को, है कहाँ अवकाश तब?।
अर किसतरह हो कर्मबन्धन? जगी जगमग ज्योति जब।।४७।।

ॐ ह्रीं बन्धनिरोधोपायप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।६२।।

अब, जिनागम की महत्वपूर्ण गाथाओं के माध्यम से 'शुद्धात्मा का स्वरूप और आस्रव की विशेषता बताते हुए आस्रव-निवृत्ति का उपाय' प्रस्तुत करते हैं –

(हरिगीत)

मैं एक हूँ मैं शुद्ध निर्मम, ज्ञान-दर्शन पूर्ण हूँ।
थित लीन निज में ही रहूँ सब, आस्रवों का क्षय करूँ।।७३।।

ये सभी जीव-निबद्ध अध्रुव, शरणहीन अनित्य हैं।
दु:खरूप दु:ख-फल जानकर, इनसे निवर्तन बुध करें।।७४।।

ॐ ह्रीं आस्रवनिवृत्त्युपायभूत-शुद्धात्माऽऽस्रवयोः भेदज्ञानप्ररूपक-श्रीसमय-साराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।६३।।

अब, पाँच गाथाओं के माध्यम से कहते हैं कि 'सम्यग्ज्ञानी, कर्म-नोकर्म-कर्मफल आदि का ज्ञाता ही है, कर्ता नहीं' -

(सवैया इकतीसा)

इस प्रकार जान भिन्नता विभाव भाव की,
कर्तृत्व का अहं विलायमान हो रहा।
निज विज्ञानघन भाव गजारूढ़ हो,
निज भगवान शोभायमान हो रहा।।
जगत् का साक्षी है पुरुष पुराण यह,
अपने स्वभाव में विकासमान हो रहा।
अहो! सद्ज्ञानवन्त दृष्टिवन्त यह पुमान,
जग-मग ज्योतिमय प्रकाशमान हो रहा।।४८।।

(हरिगीत)

करम के परिणाम को, नोकरम के परिणाम को।
जो ना करे, बस! मात्र जाने, प्राप्त हो सद्ज्ञान को।।७५।।
परद्रव्य की पर्याय में, उपजे ग्रहे ना परिणमें।
बहुभाँति पुद्गल कर्म को ज्ञानी पुरुष जाना करें।।७६।।
परद्रव्य की पर्याय में, उपजे ग्रहे ना परिणमें।
बहुभाँति निज परिणाम सब, ज्ञानी पुरुष जाना करें।।७७।।
परद्रव्य की पर्याय में, उपजे ग्रहे ना परिणमें।
पुद्गल करम का नंतफल, ज्ञानी पुरुष जाना करें।।७८।।
परद्रव्य की पर्याय में, उपजे ग्रहे ना परिणमें।
इस ही तरह पुद्गल दरव, निजभाव से ही परिणमें।।७९।।

ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानीस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।६४।।

अब, 'जहाँ व्याप्य-व्यापक भाव होता है, वहीं कर्ता-कर्मभाव होता है – यह कलश के माध्यम से कहते हैं –

(सवैया इकतीसा)

तत्स्वरूप भाव में ही व्याप्य-व्यापक बने,
बने न कदापि वह अतत्स्वरूप भाव में।
कर्ता-कर्म भाव का बनना असम्भव है,
व्याप्य-व्यापकभाव सम्बन्ध के अभाव में।।
इस भाँति प्रबल विवेक दिनकर-सा ही,
भेद-अन्धकार लीन निज ज्ञान भाव में।
कर्तृत्व भार से शून्य शोभायमान,
पूर्ण निर्भार मगन आनन्द स्वभाव में।।४९।।

ॐ ह्रीं व्याप्य-व्यापकत्वैव कर्तृ-कर्मभावप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।६५।।

अब, यह कहते हैं कि जीव व पुद्गल में परस्पर निमित्त-नैमित्तिक भाव होने पर भी कर्ता-कर्म व भोक्ता-भोग्य भाव नहीं है –

(सवैया इकतीसा)

निज-पर-परिणति जानकार जीव यह,
पर-परिणति को करता कभी नहीं।
निज-पर-परिणति अजानकार पुद्गल,
पर-परिणति को करता कभी नहीं।।
नित्य अत्यन्त भेद जीव-पुद्गल में,
करता-करम भाव उनमें बने नहीं।
ऐसो भेदज्ञान जब तक प्रगटे नहीं,
करता-करम की प्रवृत्ति मिटे नहीं।।५०।।

(हरिगीत)

जीव के परिणाम से, जड़कर्म पुद्गल परिणमे।
पुद्गल करम के निमित्त से, यह आतमा भी परिणमे।।८०।।

आतम करे ना कर्मगुण ना, कर्म आतमगुण करे।
पर परस्पर परिणमन में, दोनों परस्पर निमित्त हैं।।८१।।

बस इसलिए यह आतमा निजभाव का कर्ता कहा।
अन्य सब पुद्गलकरमकृत भाव का कर्ता नहीं।।८२।।

हे भव्यजन ! तुम जान लो परमार्थ से यह आतमा।
निजभाव को करता तथा निजभाव को ही भोगता।।८३।।

ॐ ह्रीं जीवपुद्गलयोः अन्योन्यनिमित्तमात्रत्वेऽपि कर्तृकर्म-भोक्तृभोग्यभाव-निषेधक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।६६।।

अब, 'द्विक्रियावादी का स्वरूप बताकर उसका निषेध' करते हैं –

(हरिगीत)

अनेकविध पुद्गल करम को, करे भोगे आतमा।
व्यवहारनय का कथन है यह, जान लो भव्यातमा!।।८४।।

पुद्गलकरम को करे भोगे, जगत् में यदि आतमा।
द्विक्रिया अव्यतिरिक्त हों, सम्मत न जो जिनधर्म में।।८५।।

यदि आतमा जड़भाव-चेतनभाव दोनों को करे।
तो आतमा द्विक्रियावादी मिथ्यादृष्टि अवतरे।।८६।।

ॐ ह्रीं द्विक्रियावादीमिथ्यादृष्टिनिषेधक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।६७।।

अब, चार कलशों में 'निश्चय कर्ता-कर्म-क्रिया का स्वरूप' बताते हैं–

(हरिगीत)

कर्ता वही जो परिणमे, परिणाम ही बस कर्म है।
है परिणति ही क्रिया बस! तीनों अभिन्न अखण्ड हैं।।५१।।

अनेक होकर एक है, हो परिणमित बस! एक ही।
परिणाम हो बस! एक का, हो परिणति बस! एक की।।५२।।

परिणाम दो का एक ना, मिलकर नहीं दो परिणमे।
परिणति दो की एक ना, बस! क्योंकि दोनों भिन्न हैं।।५३।।

कर्ता नहीं दो एक के, हों एक के दो कर्म ना।
ना दो क्रियायें एक की हों, क्योंकि एक अनेक ना।।५४।।

ॐ ह्रीं कर्तृ-कर्म-क्रियास्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।६८।।

अब, आगामी कलश में कहते हैं कि 'यदि यह कर्ता-कर्मसम्बन्धी अनादिकालीन अज्ञान, एक बार नष्ट हो तो फिर इसका उदय ही न हो' –

(हरिगीत)

'पर को करूँ मैं' – यह अहं, अत्यन्त ही दुर्वार है।
यह है अखण्ड अनादि से, जीवन हुआ दुःस्वार है।।
भूतार्थनय के ग्रहण से यदि, प्रलय को यह प्राप्त हो।
तो ज्ञान के घनपिण्ड आतम, को कभी ना बन्ध हो।।५५।।

(दोहा)

परभावों को पर करे, आतम आतमभाव।
आप आपके भाव हैं, पर के हैं परभाव।।५६।।

ॐ ह्रीं कर्तृ-कर्माऽज्ञाननिषेधक-भूतार्थग्रहणप्रेरक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।६९।।

अब, 'मिथ्यात्वादि जीव-अजीव के भेद से दो-दो प्रकार के हैं', यह बताते हैं –

(हरिगीत)

मिथ्यात्व-अविरति-योग-मोहाऽज्ञान और कषाय हैं।
ये सभी जीवाऽजीव हैं, ये सभी द्विविध प्रकार हैं।।८७।।

मिथ्यात्व आदि अजीव जो, वे सभी पुद्गल कर्म हैं।
मिथ्यात्व आदि जीव हैं जो, वे सभी उपयोग हैं।।८८।।

मोहयुत उपयोग के, परिणाम तीन अनादि से।
जानो उन्हें मिथ्यात्व, अविरतभाव अर अज्ञान ये।।८९।।

ॐ ह्रीं जीवाऽजीवरूपेण मिथ्यात्वादिभेदप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।७०।।

अब, कहते हैं कि 'अज्ञान से ही कर्तृत्व उत्पन्न होता है और ज्ञान से कर्तृत्व नष्ट होता है' –

(हरिगीत)

यद्यपी उपयोग तो, नित ही निरंजन शुद्ध है।
जिसरूप परिणत हो त्रिविध, वह उसी का कर्ता बने।।९०।।

आतम करे जिस भाव को, उस भाव का कर्ता बने।
बस! स्वयं ही उस समय पुद्गल, कर्मभावे परिणमे।।९१।।

पर को करे निजरूप जो, पररूप जो निज को करे।
अज्ञानमय वह आतमा, पर करम का कर्ता बने।।९२।।

पररूप ना निज को करे, पर को करे निजरूप ना।
अकर्ता पर रहे करम का, सद्ज्ञानमय वह आतमा।।९३।।

त्रिविध यह उपयोग जब, 'मैं क्रोध हूँ' इम परिणमे।
तब जीव उस उपयोगमय, परिणाम का कर्ता बने।।९४।।

त्रिविध यह उपयोग जब, 'मैं धर्म हूँ' इम परिणमे।
तब जीव उस उपयोगमय, परिणाम का कर्ता बने।।९५।।

इसतरह यह मन्दबुद्धि, स्वयं के अज्ञान से।
निजद्रव्य को पर करे अरु, परद्रव्य को अपना करे।।९६।।

बस! इसतरह कर्ता कहें, परमार्थ ज्ञायक आतमा।
जो जानते यह तथ्य वे, छोड़ें सकल कर्तापना।।९७।।

ॐ ह्रीं अज्ञानात्कर्तृत्व-ज्ञानादकर्तृत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।७१।।

अब, छह कलशों के माध्यम से यह स्पष्ट करते हैं कि 'अज्ञान व ज्ञान से क्या-क्या होता है?' –

(कुण्डलिया)

नाज सम्मिलित घास को, ज्यों खावे गजराज।
भिन्न स्वाद जाने नहीं, समझे मीठी घास।।
समझे मीठी घास नाज को न पहिचाने।
त्यों अज्ञानी जीव निजातम स्वाद न जाने।।
पुण्य-पाप में धार एकता-शून्य हिया है।
अरे! शिखरणी पी मानो गो-दूध पिया है।।५७।।

(हरिगीत)

अज्ञान से ही भागते मृग, रेत को जल मानकर।
अज्ञान से ही डरें तम में, रस्सी विषधर मानकर।।
ज्ञानमय है जीव पर, अज्ञान के कारण अहो!।
वातोद्वेलित उदधिवत्, कर्ता बने आकुलित हो।।५८।।

दूध-जल में भेद जाने, ज्ञान से बस! हंस ज्यों।
सद्ज्ञान से अपना-पराया, भेद जाने जीव त्यों।।
जानता तो है सभी, करता नहीं कुछ आतमा।
चैतन्य में आरूढ़ नित ही, यह अचल परमातमा।।५९।।

(आडिल्ल)

उष्णोदक में उष्णता है अग्नि की।
और शीतलता सहज ही नीर की।।
व्यंजनों में है नमक का क्षारपन।
ज्ञान ही यह जानता है विज्ञजन।।
क्रोधादिक के कर्तापन को छेदता।
अहंबुद्धि के मिथ्यातम को भेदता।।
इसी ज्ञान में प्रगटे निज शुद्धात्मा।
अपने रस से भरा हुआ यह आतमा।।६०।।

(सोरठा)

करे निजातम भाव, ज्ञान और अज्ञानमय।
करे न पर के भाव, ज्ञानस्वभावी आतमा।।६१।।

ज्ञानस्वभावी जीव, करे ज्ञान से भिन्न क्या?।
कर्ता पर का जीव, जगज्जनों का मोह यह।।६२।।

ॐ ह्रीं कर्तृ-कर्मविषये ज्ञानाऽज्ञानयोः फलप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।७२।।

अब, 'आत्मा को व्यवहार से ही परद्रव्य का कर्तृत्व है, निश्चय से नहीं', यह बताते हैं –

(हरिगीत)

व्यवहार से यह आतमा, घट-पट-रथादिक द्रव्य का।
इन्द्रियों का कर्म का, नोकर्म का कर्ता कहा।।९८।।

परद्रव्यमय हो जाय यदि, परद्रव्य में कुछ भी करे।
परद्रव्यमय होता नहीं बस! इसलिए कर्ता नहीं।।९९।।

ना घट करे ना पट करे, ना अन्य द्रव्यों को करे।
कर्ता कहा तत्रूप परिणत, योग अर उपयोग का।।१००।।

ॐ ह्रीं व्यवहार-कर्तृत्वे निश्चयनयेन दोषः इतिप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।७३।।

अब, 'ज्ञानी-अज्ञानी दोंनों में से कोई भी परद्रव्य का कर्ता नहीं है' - यह कहते हैं–

(हरिगीत)

ज्ञानावरण आदिक जु पुद्गल द्रव्य के परिणाम हैं।
उनको करे ना आतमा, जो जानते वे ज्ञानी हैं।।१०१।।

निजकृत शुभाशुभभाव का, कर्ता कहा है आतमा।
वे भाव उसके कर्म हैं, वेदक है उनका आतमा।।१०२।।

जब संक्रमण ना करे कोई द्रव्य, पर गुण–द्रव्य में।
तब करे कैसे परिणमन इक द्रव्य, पर गुण–द्रव्य में।।१०३।।

कुछ भी करे ना जीव, पुद्गल कर्म के गुण-द्रव्य में।
जब उभय का कर्ता नहीं, तब किसतरह कर्ता कहें?।।१०४।।

ॐ ह्रीं परद्रव्यकर्तृत्वनिषेधक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।७४।।

अब, 'जीव को परद्रव्य का कर्ता कहना, यह व्यवहारनय का कथन है' – ऐसा दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं –

(हरिगीत)

बन्ध का जो हेतु उस, परिणाम को लख जीव में।
करम कीने जीव ने बस!, कह दिया उपचार से।।१०५।।

रण में लड़े भट पर कहे जग, युद्ध राजा ने किया।
बस! उस तरह द्रव्यकर्म आतम ने किये व्यवहार से।।१०६।।

ग्रहे - बाँधे - परिणमावे, करे या पैदा करे।
पुद्गल दरव को आतमा, व्यवहारनय का कथन है।।१०७।।

गुण–दोष उत्पादक कहा ज्यों, भूप को व्यवहार से।
त्यों जीव पुद्गल द्रव्य का, कर्ता कहा व्यवहार से।।१०८।।

ॐ ह्रीं कर्तृत्वसम्बन्धी–व्यवहारदर्शक–श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं... ।।७५।।

अब, 'मिथ्यात्वादि चार प्रत्यय अथवा तेरह गुणस्थान, पुद्गल कर्म के कर्ता हैं' - यह बताते हैं –

(दोहा)

यदि पुद्गलमय कर्म को, करे न चेतनराय।
कौन करे? अब यह कहें, सुनो! भरम नश जाय।।६३।।

(हरिगीत)

मिथ्यात्व अरु अविरमण योग, कषाय के परिणाम हैं।
सामान्य से ये चार प्रत्यय, कर्म के कर्ता कहे।।१०९।।

मिथ्यात्व आदि सयोगि-जिन तक, जो कहे गुणथान हैं।
बस! ये त्रयोदश भेद प्रत्यय, के कहे जिनसूत्र में।।११०।।

पुद्गल करम के उदय से, उत्पन्न ये सब अचेतन-।
करम के कर्ता हैं ये, वेदक नहीं है आतमा।।१११।।

गुण नाम के ये सभी प्रत्यय, कर्म के कर्ता कहे।
कर्ता रहा ना जीव, ये गुणथान ही कर्ता रहे।।११२।।

ॐ ह्रीं पुद्गलकर्म-कर्तृत्वनिरूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं... ।।७६।।

अब, 'जीव और द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म में एकत्व नहीं है', यह बताते हैं –

(हरिगीत)

उपयोग जीव अनन्य ज्यों यदि, त्यों हि क्रोध अनन्य हो।
तो जीव और अजीव दोनों, एक ही हो जायेंगे।।११३।।

यदि जीव और अजीव दोनों, एक हों तो इसतरह।
का दोष प्रत्यय, कर्म अर नोकर्म में भी आयगा।।११४।।

क्रोधऽन्य है अर अन्य है, उपयोगमय यह आतमा।
तो कर्म अरु नोकर्म प्रत्यय, अन्य होंगे क्यों नहीं?।।११५।।

ॐ ह्रीं द्रव्य-भाव-नोकर्मणां आत्मना सहैकत्वनिषेधक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ७७।।

अब, आगामी पाँच गाथाओं एवं एक कलश में 'पुद्गलद्रव्य का परिणमन-स्वभाव' सयुक्तिक सिद्ध करते हैं –

(हरिगीत)

यदि स्वयं ही कर्मभाव से, परिणत न हो ना बँधे ही।
तो अपरिणामी सिद्ध होगा, कर्ममय पुद्गल दरव।।११६।।

कर्मत्व में यदि वर्गणाएँ, परिणमित होंगी नहीं।
तो सिद्ध होगा सांख्य मत, संसार की हो नास्ति।।११७।।

यदि परिणमावे जीव, पुद्गल दरव को कर्मत्व में।
पर परिणमावे किसतरह वह, अपरिणामी वस्तु को।।११८।।

यदि स्वयं ही परिणमें वे, पुद्गल दरव कर्मत्व में।
मिथ्या रही यह बात उनको, परिणमावे आतमा।।११९।।

जड़कर्म परिणत जिसतरह, पुद्गल दरव ही कर्म है।
जड़ ज्ञान-आवरणादि परिणत, ज्ञान-आवरणादि हैं।।१२०।।

(हरिगीत)

सब पुद्गलों में है स्वभाविक,परिणमन की शक्ति जब।
और उनके परिणमन में, है न कोई विघ्न जब।।
क्यों न हो तब स्वयं कर्ता, स्वयं के परिणमन का ?।
अर सहज यह नियम जानो, वस्तु के परिणमन का।।६४।।

ॐ ह्रीं पुद्गलद्रव्यस्य परिणमनस्वभावसाधक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।७८।।

अब पाँच गाथाओं एवं एक कलश में 'जीवद्रव्य के परिणमन स्वभाव' की सयुक्तिक सिद्धि करते हैं –

(हरिगीत)

यदि स्वयं ही ना बँधे अर, क्रोधादिमय परिणत न हो।
तो अपरिणामी सिद्ध होगा, जीव तेरे मत विषें।।१२१।।

स्वयं ही क्रोधादि में यदि, जीव ना हो परिणमित।
तो सिद्ध होगा सांख्य मत, संसार की हो नास्ति।।१२२।।

यदि परिणमावे कर्म-जड़, क्रोधादि में इस जीव को।
पर परिणमावे किसतरह वह, अपरिणामी वस्तु को।।१२३।।

यदि स्वयं ही क्रोधादि में, परिणमित हो यह आतमा।
मिथ्या रही यह बात उसको, परिणमावे कर्म-जड़।।१२४।।

क्रोधोपयोगी क्रोध है, मानोपयोगी मान है।
मायोपयोगी माया है, लोभोपयोगी लोभ है।।१२५।।

(हरिगीत)

आत्मा में है स्वभाविक, परिणमन की शक्ति जब।
और उसके परिणमन में, है न कोई विघ्न जब।।
क्यों न हो तब स्वयं कर्ता, स्वयं के परिणमन का?।
अर सहज यह नियम जानो, वस्तु के परिणमन का।।६५।।

ॐ ह्रीं जीवद्रव्यस्य परिणमनस्वभावसाधक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।७९।।

अब, 'अज्ञानी अज्ञानमयभावों के कारण कर्ता और ज्ञानी ज्ञानमय भावों के कारण अकर्ता होता है', यह कहते हैं –

(हरिगीत)

जो भाव आतम करे वह, उस कर्म का कर्ता बने।
ज्ञानियों के ज्ञानमय, अज्ञानि के अज्ञानमय।।१२६।।

अज्ञानमय हैं भाव इससे, अज्ञ कर्ता कर्म का।
बस! ज्ञानमय हैं इसलिए, ना विज्ञ कर्ता कर्म का।।१२७।।

ॐ ह्रीं ज्ञानी-अज्ञानिनोऽकर्तृत्व-कर्तृत्वप्रसाधक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।८०।।

अब, 'ज्ञानी के ज्ञानमय और अज्ञानी के अज्ञानमय भाव ही क्यों होते हैं?' – यह दो कलश और चार गाथाओं में दृष्टान्त सहित स्पष्ट कहते हैं –

(रोला)

ज्ञानी के सब भाव शुभाशुभ ज्ञानमयी हैं।
अज्ञानी के वही भाव अज्ञानमयी हैं।।
ज्ञानी और अज्ञानी में यह अन्तर क्यों है?।
तथा शुभाशुभभावों में भी अन्तर क्यों है।।६६।।

(हरिगीत)

ज्ञानमय परिणाम से, परिणाम हों सब ज्ञानमय।
बस! इसलिए सद्ज्ञानियों के, भाव हों सद्ज्ञानमय।।१२८।।

अज्ञानमय परिणाम से, परिणाम हों अज्ञानमय।
बस! इसलिए अज्ञानियों के, भाव हों अज्ञानमय।।१२९।।

स्वर्ण-निर्मित कुण्डलादि, स्वर्णमय ही हों सदा।
लोह-निर्मित कटक आदि, लोहमय ही हों सदा।।१३०।।

इस ही तरह अज्ञानियों के, भाव हों अज्ञानमय।
इस ही तरह सब भाव हों, सद्ज्ञानियों के ज्ञानमय।।१३१।।

(रोला)

ज्ञानी के सब भाव ज्ञान से बने हुए हैं।
अज्ञानी के सभी भाव अज्ञानमयी हैं।।
उपादान के ही समान कारज होते हैं।
जौ बौने पर जौ ही तो पैदा होते हैं।।६७।।

ॐ ह्रीं ज्ञानी-अज्ञानिनोः ज्ञानाऽज्ञानभावयोः कर्तृत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।८१।।

अब, 'अज्ञानी के अज्ञानमय भाव ही कर्म-बन्धन के निमित्त-कारणरूप हेतु हैं' – यह एक कलश और पाँच गाथाओं से स्पष्ट करते हैं –

(दोहा)

अज्ञानी अज्ञानमय, भावभूमि में व्याप्त।
इस कारण द्रव्य-बन्ध के, हेतुपने को प्राप्त।।६८।।

(हरिगीत)

निजतत्त्व का अज्ञान ही, बस! उदय है अज्ञान का।
निजतत्त्व अश्रद्धान ही, बस! उदय है मिथ्यात्व का।।१३२।।

अविरमण का सद्भाव ही, बस! असंयम का उदय है।
उपयोग की यह कलुषिता ही, कषायों का उदय है।।१३३।।

शुभ-अशुभ चेष्टा में तथा, निवृत्ति में या प्रवृत्ति में।
जो चित्त का उत्साह है, वह ही उदय है योग का।।१३४।।

इनके निमित्त के योग से, जड़-वर्गणाएँ कर्म की।
परिणमित हों सब ज्ञान-आवरणादि वसुविध कर्म में।।१३५।।

इस तरह वसुविध कर्म से, आबद्ध जिय जब हो तभी।
अज्ञानमय निजभाव का हो, हेतु जिय जिनवर कहें।।१३६।।

ॐ ह्रीं अज्ञानिनः अज्ञानमयभावानां कर्मबन्धननिमितत्त्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।८२।।

अब, सतर्क यह कहते हैं कि 'जीवद्रव्य और पुद्गलद्रव्य के परिणाम परस्पर पृथक्-पृथक् ही होते हैं –

(हरिगीत)

इस जीव के रागादि, पुद्गलकर्म में भी हों यदि।
तो जीववत् जड़कर्म भी, रागादिमय हो जायेंगे।।१३७।।

किन्तु जब जड़कर्म बिन ही, जीव के रागादि हों।
तब कर्म-जड़-पुद्गलमयी, रागादिमय कैसे बनें?।।१३८।।

यदि कर्ममय परिणाम, पुद्गलद्रव्य का जिय साथ हो।
तो जीव भी जड़कर्मवत्, कर्मत्व को ही प्राप्त हो।।१३९।।

किन्तु जब जियभाव बिन ही, एक पुद्गलद्रव्य का।
यह कर्ममय परिणाम है तो, जीव जड़मय क्यों बने?।।१४०।।

ॐ ह्रीं जीव-पुद्गलयोः परस्परपृथक्भूत-परिणामप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।८३।।

अब, 'जीव के साथ कर्म-बन्ध है या नहीं', 'जीव मूढ है या नहीं', इत्यादि परस्पर-विरुद्ध अनेक अपेक्षाओं के सम्बन्ध में नय-विभाग स्पष्ट करते हुए 'पक्षातिक्रान्त ही समयसार है', यह समझाते हैं –

जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं चेदि ववहारणयभणिदं।
सुद्धणयस्स दु जीवे अबद्धपुट्ठं हवदि कम्मं।।१४१।।
कम्मं बद्धमबद्धं जीवे एवं तु जाण णयपक्खं।
पक्खादिक्कंतो पुण भण्णदि जो सो समयसारो।।१४२।।

(हरिगीत)

'कर्म से आबद्ध जिय' यह कथन है व्यवहार का।
पर 'कर्म से ना बद्ध जिय' यह कथन है परमार्थ का।।१४१।।
'अबद्ध है या बद्ध है जिय' ये सभी नयपक्ष हैं।
नयपक्ष से अतिक्रान्त जो, वह ही समय का सार है।।१४२।।

ॐ ह्रीं 'पक्षातिक्रान्त एव समयसार' इतिप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।८४।।

अब, 'जो समस्त नयपक्ष के विकल्पों का अतिक्रम करता है, वही समयसार को प्राप्त करता है'; अतः आचार्य अमृतचन्द्रदेव, नयपक्ष के त्याग की भावना वाले २३ कलशरूप काव्य लिखते हैं –

(सोरठा)

जो निवसे निज माहि, छोड़ सभी नयपक्ष को।
करे सुधारस पान, निर्विकल्प चित शान्त हो।।६९।।

(रोला)

एक कहे ना बँधा, दूसरा कहे बँधा है।
किन्तु यह तो उभय नयों का पक्षपात है।।
पक्षपात से रहित, तत्त्व-वेदी जो जन हैं।
उनको तो यह जीव, सदा चैतन्यरूप है।।७०।।

एक कहे ना मूढ़, दूसरा कहे मूढ़ है।
किन्तु यह तो उभय नयों का पक्षपात है।।
पक्षपात से रहित, तत्त्व-वेदी जो जन हैं।
उनको तो यह जीव, सदा चैतन्यरूप है।।७१।।

एक कहे ना रक्त, दूसरा कहे रक्त है।
किन्तु यह तो उभय नयों का पक्षपात है।।
पक्षपात से रहित, तत्त्व-वेदी जो जन हैं।
उनको तो यह जीव, सदा चैतन्यरूप है।।७२।।

एक कहे ना दुष्ट, दूसरा कहे दुष्ट है।
किन्तु यह तो उभय नयों का पक्षपात है।।
पक्षपात से रहित, तत्त्व-वेदी जो जन हैं।
उनको तो यह जीव, सदा चैतन्यरूप है।।७३।।

एक अकर्ता कहे, दूसरा कर्ता कहता।
किन्तु यह तो उभय नयों का पक्षपात है।।
पक्षपात से रहित, तत्त्व-वेदी जो जन हैं।
उनको तो यह जीव, सदा चैतन्यरूप है।।७४।।

एक अभोक्ता कहे, दूसरा भोक्ता कहता।
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।।
पक्षपात से रहित, तत्त्व-वेदी जो जन हैं।
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है।।७५।।

एक कहे ना जीव, दूसरा कहे जीव है।
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।।
पक्षपात से रहित, तत्त्व-वेदी जो जन हैं।
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है।।७६।।

एक कहे ना सूक्ष्म, दूसरा कहे सूक्ष्म है।
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।।
पक्षपात से रहित, तत्त्व-वेदी जो जन हैं।
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है।।७७।।

एक कहे ना हेतु, दूसरा कहे हेतु है।
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।।
पक्षपात से रहित, तत्त्व-वेदी जो जन हैं।
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है।।७८।।

एक कहे ना कार्य, दूसरा कहे कार्य है।
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।।

पक्षपात से रहित, तत्त्व-वेदी जो जन हैं।
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है।।७९।।

एक कहे ना भाव, दूसरा कहे भाव है।
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।।
पक्षपात से रहित, तत्त्व-वेदी जो जन हैं।
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है।।८०।।

एक कहे ना एक, दूसरा कहे एक है।
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।।
पक्षपात से रहित, तत्त्व-वेदी जो जन हैं।
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है।।८१।।

एक कहे ना सान्त, दूसरा कहे सान्त है।
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।।
पक्षपात से रहित, तत्त्व-वेदी जो जन हैं।
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है।।८२।।

एक कहे ना नित्य, दूसरा कहे नित्य है।
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।।
पक्षपात से रहित, तत्त्व-वेदी जो जन हैं।
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है।।८३।।

एक कहे ना वाच्य, दूसरा कहे वाच्य है।
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।।
पक्षपात से रहित, तत्त्व-वेदी जो जन हैं।
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है।।८४।।

नाना कहता एक, दूसरा कहे अनाना।
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।।
पक्षपात से रहित, तत्त्व-वेदी जो जन हैं।
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है।।८५।।

एक कहे ना चेत्य, दूसरा कहे चेत्य है।
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।।
पक्षपात से रहित, तत्त्व-वेदी जो जन हैं।
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है।।८६।।

एक कहे ना दृश्य, दूसरा कहे दृश्य है।
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।।
पक्षपात से रहित, तत्त्व-वेदी जो जन हैं।
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है।।८७।।

एक कहे ना वेद्य, दूसरा कहे वेद्य है।
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।।
पक्षपात से रहित, तत्त्व-वेदी जो जन हैं।
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है।।८८।।

एक कहे ना भात, दूसरा कहे भात है।
किन्तु यह तो उभयनयों का पक्षपात है।।
पक्षपात से रहित, तत्त्व-वेदी जो जन हैं।
उनको तो यह जीव सदा चैतन्यरूप है।।८९।।

(हरिगीत)

उठ रहा जिसमें है अनन्ते, विकल्पों का जाल है।
वह वृहद् नय-पक्ष-कक्षा, विकट है विकराल है।।
उल्लंघन कर उसे बुध, अनुभूतिमय निजभाव को।
हो प्राप्त अन्तर्बाह्य से, समरसी एक स्वभाव को।।९०।।

(दोहा)

इन्द्रजाल से स्फुरें, सब विकल्प के पुंज।
जो क्षणभर में लय करे, मैं हूँ वह चित्पुंज।।९१।।

ॐ ह्रीं सकलनयपक्षसंन्यासभावनानर्तक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।८५।।

अब, पक्षातिक्रान्त का स्वरूप कहते हैं –

दोण्ह वि णयाण भणिदं जाणदि णवरं तु समयपडिबद्धो।
ण दु णयपक्खं गिण्हदि किंचि वि णयपक्खपरिहीणो।।१४३।।

(हरिगीत)

दोनों नयों को जानते, पर ना ग्रहे नयपक्ष को।
नयपक्ष से परिहीन पर, निज समय से प्रतिबद्ध वे।।१४३।।

ॐ ह्रीं पक्षातिक्रान्तस्वरूपप्रतिपादक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।८६।।

अब, 'पक्षातिक्रान्त का स्वरूप बताकर, आगामी कलश में 'समयसार-स्वरूप भगवान आत्मा के अनुभव की प्रेरणा' देते हैं –

(रोला)

मैं हूँ वह चित्पुंज कि भावाभाव भावमय।
परमारथ से एक सदा अविचल स्वभावमय।।
कर्मजनित यह बन्धपद्धति करूँ पार मैं।
नित अनुभव यह करूँ कि चिन्मय समयसार मैं।।९२।।

ॐ ह्रीं पक्षातिक्रान्त-समयसारस्वरूप-परमात्मानुभवप्रेरक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।८७।।

अब, एक गाथा और एक कलश के माध्यम से कहते हैं कि 'पक्षातिक्रान्त- स्वरूप समयसार ही सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान है' –

सम्मद्दंसणणाणं एसो लहदि त्ति णवरि ववदेसं।
सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो।।१४४।।

(हरिगीत)

विरहित सभी नयपक्ष से जो, वह समय का सार है।
है वही सम्यग्ज्ञान एवं वही समकित सार है।।१४४।।

(हरिगीत)

यह पुण्य-पुरुष-पुराण सब, नयपक्ष बिन भगवान है।
यह अचल है अविकल्प है, बस यही दर्शन-ज्ञान है।।
निभृतजनों का स्वाद्य है, अर जो समय का सार है।
जो भी हो वह बस! एक ही, अनुभूति का आधार है।।९३।।[१]

ॐ ह्रीं 'पक्षातिक्रान्त-समयसार एव सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञानम्' इतिप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।८८।।

अब, आगामी कलश में 'आत्मानुभव कैसे होता है?' यह दृष्टान्तपूर्वक बताते हैं –

(हरिगीत)

निज औघ से च्युत जिस तरह जल, ढालवाले मार्ग से।
बलपूर्वक यदि मोड़ दें तो, आ मिले निज औघ से।।
उस ही तरह यदि मोड़ दें, बलपूर्वक निजभाव को।
निजभाव से च्युत आत्मा, निजभाव में ही आ मिले।।९४।।

ॐ ह्रीं दृष्टान्तपुरस्सर-स्वानुभवप्रेरक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।८९।।

अब, कहते हैं कि विकल्प करनेवाला कर्ता है और मात्र विकल्प ही उसका कर्म है –

(रोला)

है विकल्प ही कर्म विकल्पक कर्ता होवे।
जो विकल्प को करे वही तो कर्ता होवे।।
नित अज्ञानी जीव विकल्पों में ही होवे।
इस विधि कर्ता-कर्मभाव का नाश न होवे।।९५।।

ॐ ह्रीं 'विकल्प एव कर्म - विकल्पक एव कर्तृ' इतिप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।९०।।

अब, इस अधिकार का उपसंहार करते हुए अन्तिम चार कलशों में कहते हैं कि 'जो कर्ता है, वह ज्ञाता नहीं होता और जो ज्ञाता है, वह कर्ता नहीं होता' –

(रोला)

जो करता है वह केवल कर्ता ही होवे।
जो जाने बस! वह केवल ज्ञाता ही होवे।।
जो करता वह नहीं जानता कुछ भी भाई!।
जो जाने वह करे नहीं कुछ भी हे भाई!।।९६।।

(रोला)

करने रूप क्रिया में जानन भासित ना हो।
जानन रूप क्रिया में करना भासित ना हो।।
इसीलिए तो जानन-करना भिन्न-भिन्न हैं।
इसीलिए तो ज्ञाता-कर्ता भिन्न-भिन्न हैं।।९७।।

(हरिगीत)

कर्म में कर्ता नहीं अर, कर्म कर्ता में नहीं।
इसलिए कर्ता-कर्म की थिति, भी कभी बनती नहीं।।
कर्म में है कर्म, ज्ञाता में रहा ज्ञाता सदा।
यदि साफ है यह बात तो फिर, मोह है क्यों नाचता?।।९८।।

(सवैया इकतीसा)

जगमग जगमग जली ज्ञान-ज्योति जब,
अति गम्भीर चित् शक्तियों के भार से।।
अद्भुत अनुपम अचल अभेद ज्योति,
व्यक्त धीर-वीर निर्मल आर-पार से।।
तब कर्म कर्म अर कर्ता कर्ता न रहा।
ज्ञान ज्ञानरूप हुआ आनन्द अपार से।।
और पुद्गलमयी कर्म कर्मरूप हुआ,
ज्ञानी पार हुए भव-सागर अपार से।।९९।।

ॐ ह्रीं ज्ञातृत्व-कर्तृत्वयोः भेदज्ञानप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।९१।। (इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

जयमाला

(दोहा)

अरे! विगत अधिकार में, परद्रव्यों के साथ।
रे एकत्व-ममत्व को, छुड़वाया हे नाथ!।।१।।

अब इस अधिकार में, कर्ता-भोक्ता भाव।
को छुड़वाते भव्यजन! इनका करो अभाव।।२।।

वर्णादि रागादि को, करे न भोगे जीव।
ज्ञाता-दृष्टा ही रहे, निज में रमे सदीव।।३।।

(रोला)

रे! एकत्व-ममत्व और कर्ता-भोक्तापन।
यदि होवे पर में तो मिथ्यादर्श कहा है।।
अरे! नहीं है कोई भी परद्रव्य किसी का।
और नहीं है कोई किसी का कर्ता-भोक्ता।।४।।

सब अपने-अपने में ही परिपूर्ण तत्त्व हैं।
कर्ता-भोक्ता भी सब अपने-अपने ही हैं।।
दो द्रव्यों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं है।
सब अपने-अपने में ही शोभित होते हैं।।५।।

इस जग का कर्ता कोई भगवान नहीं है।
सुनो भव्य! यह बात मात्र इतनी ही नहीं है।।
एक द्रव्य है नहीं अन्य का कर्ता-धर्ता।
मूल बात तो यह है इसे ध्यान से जानों।।६।।

इसे भूलकर जो पर के कर्ता बनते हैं।
वे अज्ञानी जीव चतुर्गति भ्रमण करेंगे।।

उनके भव का अन्त नहीं है दूर-दूर तक।
वे चौरासी लाख योनियों में घूमेंगे।।७।।

है विकल्प ही कर्म विकल्पक कर्ता होवे।
जो विकल्प को करे वही तो कर्ता होवे।।
नित अज्ञानी जीव विकल्पों में ही होवे।
इस विधि कर्ता-कर्मभाव का नाश न होवे।।८।।

जो करता है वह केवल कर्ता ही होवे।
जो जाने बस! वह केवल ज्ञाता ही होवे।।
जो करता वह नहीं जानता कुछ भी भाई!।
जो जाने वह करे नहीं कुछ भी हे भाई!।।९।।

करने रूप क्रिया में जानन भासित ना हो।
जानन रूप क्रिया में करना भासित ना हो।।
इसीलिए तो जानन-करना भिन्न-भिन्न है।
इसीलिए तो ज्ञाता-कर्ता भिन्न-भिन्न हैं।।१०।।

(दोहा)

ज्ञाता बनना इष्ट है, कर्ता-भाव अनिष्ट।
कर्ता-भाव विनाश कर, ज्ञाताभाव-प्रविष्ट।।११।।

ॐ ह्रीं कर्ताकर्मस्वरूपप्रतिपादक-कर्ताकर्माधिकाराय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्ता-कर्म विभाव की, चर्चा हुई समाप्त।
अब होगी रे भव्यजन! पुण्य-पाप की बात।।१२।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

४

पुण्य-पाप अधिकार पूजन

स्थापना

(दोहा)

पुण्य-पाप दोनों करम, शिवमग-रोकनहार।
पुण्य-पाप से पार है, आतम धरम अपार।। १।।

शुभभावों से जो बँधे, पुण्य करम है सोय।
अशुभभाव से बंधे जो, पाप करम वह होय।। २।।

(सोरठा)

करम-बन्ध न होय, जिन भावों से जगत् में।
धरम रूप हैं सोय, शुद्धभाव उनको कहें।। ३।।

ॐ ह्रीं पुण्यपापैकत्वप्रतिपादक-श्रीपुण्यपापाधिकार! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं पुण्यपापैकत्वप्रतिपादक-श्रीपुण्यपापाधिकार! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं पुण्यपापैकत्वप्रतिपादक-श्रीपुण्यपापाधिकार ! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्। *(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)*

(रोला)

जल

मोहभाव का मल हर लेता यह निर्मल जल।
राग-द्वेष के मलिन भाव धो देता यह जल।।
पुण्य-पाप के भाव चतुर्गति-भ्रमण करावें।
समतारसमय शुद्धभाव शिवपुर पहुँचावे।।

ॐ ह्रीं पुण्यपापैकत्वप्रतिपादक-श्रीपुण्यपापाधिकाराय जन्मजरामत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

चन्दन सम शीतल शुद्धभाव को मेरा वन्दन।
भव-भव का भवताप शान्त कर देता चन्दन।।
पुण्य-पाप के भाव चतुर्गति-भ्रमण करावें।
समतारसमय शुद्धभाव शिवपुर पहुँचावे।।

ॐ ह्रीं पुण्यपापैकत्वप्रतिपादक-श्रीपुण्यपापाधिकाराय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत

अचल अखण्डित अक्षत शुद्धभावमय जानो।
अमलानन्दमयी अद्भुत निज आतम मानो।।
पुण्य-पाप के भाव चतुर्गति-भ्रमण करावें।
समतारसमय शुद्धभाव शिवपुर पहुँचावे।।

ॐ ह्रीं पुण्यपापैकत्वप्रतिपादक-श्रीपुण्यपापाधिकाराय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

परम सुगन्धित पुष्प गन्ध विरहित आतम को।
परम शान्ति कैसे दें सुखमय परमातम को।।
पुण्य-पाप के भाव चतुर्गति-भ्रमण करावें।
समतारसमय शुद्धभाव शिवपुर पहुँचावे।।

ॐ ह्रीं पुण्यपापैकत्वप्रतिपादक-श्रीपुण्यपापाधिकाराय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नैवेद्य

सरस सुगन्धित नेवज विषयानन्दमयी हैं।
अपने रस से भरा हुआ अपना आतम है।।
पुण्य-पाप के भाव चतुर्गति-भ्रमण करावें।
समतारसमय शुद्धभाव शिवपुर पहुँचावे।।

ॐ ह्रीं पुण्यपापैकत्वप्रतिपादक-श्रीपुण्यपापाधिकाराय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप

रतनत्रयी दीप की ज्योति अखण्डित होती।
स्वपरप्रकाशक भव्यभाव से मण्डित होती।।
पुण्य-पाप के भाव चतुर्गति-भ्रमण करावें।
समतारसमय शुद्धभाव शिवपुर पहुँचावे।।

ॐ ह्रीं पुण्यपापैकत्वप्रतिपादक-श्रीपुण्यपापाधिकाराय मोहान्धकार - विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप

दश धर्मों से सहित दशांगी धर्म धरोहर।
दश द्रव्यों से बनी दशांगी धूप मनोहर।।
पुण्य-पाप के भाव चतुर्गति-भ्रमण करावें।
समतारसमय शुद्धभाव शिवपुर पहुँचावे।।

ॐ ह्रीं पुण्यपापैकत्वप्रतिपादक-श्रीपुण्यपापाधिकाराय अष्टकर्मदहनाय धूपं..।

फल

अनुपम फल यह मधुर मिष्ट आनन्दमयी है।
अपना आतमराम स्वयं आनन्दमयी है।।
पुण्य-पाप के भाव चतुर्गति-भ्रमण करावें।
समतारसमय शुद्धभाव शिवपुर पहुँचावे।।

ॐ ह्रीं पुण्यपापैकत्वप्रतिपादक-श्रीपुण्यपापाधिकाराय मोक्षफलप्राप्तये फलं ... ।

अर्घ्य

यह अनर्घ्य है अर्घ्य आपको अर्पित है यह।
पुण्य-पाप के ज्ञाताजन को अर्पित है यह।।
पुण्य-पाप के भाव चतुर्गति-भ्रमण करावें।
समतारसमय शुद्धभाव शिवपुर पहुँचावे।।

ॐ ह्रीं पुण्यपापैकत्वप्रतिपादक-श्रीपुण्यपापाधिकाराय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं.. ।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अर्घ्यावली

(दोहा)

पुण्य-पाप दोऊ करम, शिवमग रोकनहार।
पुण्य-पाप से पार है, आतम धरम अपार।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

इस अधिकार में सर्वप्रथम आचार्य अमृतचन्द्रदेव, आत्मख्याति टीका के रंगमंच पर 'एक ही कर्म को दो पात्रों के माध्यम से पुण्य और पाप - ऐसे दो रूपों में प्रस्तुत[१] करते हैं' –

(हरिगीत)

शुभ अर अशुभ के भेद से, जो दोपने को प्राप्त हो।
वह कर्म भी जिसके उदय से, एकता को प्राप्त हो।।
जब मोहरज का नाश कर, सम्यक् सहित वह स्वयं ही।
जग में उदय को प्राप्त हो, वह सुधा-निर्झर ज्ञान ही।। १००।।

ॐ ह्रीं पुण्यपाप-शुभाशुभकर्म-एकत्वप्रकाशक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।९२।।

अब, आगामी कलश[१] में 'शूद्र के जुड़वा बेटों के उदाहरण के माध्यम से पुण्य-पाप की एकता' को समझाते हैं –

(रोला)

दोनों जन्मे एक साथ, शूद्रा के घर में;
एक पला बामन के घर, दूजा निज घर में।
एक छुए ना मद्य, ब्राह्मणत्वाऽभिमान से;
दूजा डूबा रहे, उसी में शूद्रभाव से।।

जातिभेद के भ्रम से ही, यह अन्तर आया;
इस कारण अज्ञानी ने, पहिचान न पाया।
पुण्य-पाप भी कर्म-जाति के जुड़वा भाई!।
दोनों ही हैं हेय, मुक्ति-मारग में भाई!।।१०१।।

ॐ ह्रीं पुण्य-पापैकत्वप्रकाशक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।९३।।

अब, आगामी एक गाथा और एक कलश के द्वारा 'पुण्य-पाप में एकत्व का हेतु' बताते हैं –

(हरिगीत)

सुशील हैं शुभकर्म और, अशुभकर्म कुशील हैं।
संसार के हैं हेतु वे, कैसे कहें कि सुशील हैं?।।१४५।।

(रोला)

अरे! पुण्य अर पाप कर्म का हेतु एक है;
आश्रय अनुभव अर स्वभाव भी सदा एक है।
अत: कर्म को एक मानना ही अभीष्ट है;
भले-बुरे का भेद जानना ठीक नहीं है।।१०२।।

ॐ ह्रीं पुण्य-पापैकत्वहेतुप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि.स्वाहा।।९४।।

अब, दृष्टान्त सहित पाँच गाथाओं और एक कलश में कहते हैं कि 'शुभ और अशुभ दोनों ही कर्मबन्ध के कारण होने से समानरूप से हेय हैं' –

(हरिगीत)

ज्यों लोह बेड़ी बाँधती, त्यों स्वर्ण की भी बाँधती।
इस भाँति ही शुभ-अशुभ, दोनों कर्म बेड़ी बाँधती।।१४६।।

दु:शील के संसर्ग से, स्वाधीनता का नाश हो।
दु:शील से संसर्ग एवं, राग को तुम मत करो।।१४७।।

जगत्जन जिस तरह कुत्सित - शील जन को जानकर।
उस पुरुष से संसर्ग एवं, राग करना त्यागते।।१४८।।

बस! उसतरह ही कर्म कुत्सित - शील हैं यह जानकर।
निजभावरत जन कर्म से, संसर्ग को हैं त्यागते।।१४९।।

विरक्त शिव-रमणी वरें, अनुरक्त बाँधें कर्म को।
जिनदेव का उपदेश यह, मत कर्म में अनुरक्त हो।।१५०।।

(दोहा)

जिनवाणी का मर्म यह, बन्ध करें सब कर्म।
मुक्ति-हेतु बस! एक ही, आत्मज्ञानमय धर्म।।१०३।।

ॐ ह्रीं शुभाशुभकर्म-समानबन्धहेतुत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं.. ।।९५।।

अब, आगामी कलश और एक गाथा में यह कहते हैं कि 'शुभाशुभकर्म दोनों का निषेध कर देने से मुनिजन अशरण नहीं होंगे, अपितु उनके लिए उनका ज्ञानस्वभावी आत्मा स्वयं परम शरणभूत है' –

(रोला)

सभी शुभाशुभभावों के निषेध होने से।
अशरण होंगे नहीं रमेंगे निजस्वभाव में।।
अरे! मुनीश्वर तो निश-दिन निज में ही रहते।
निजानन्द के परमामृत में ही नित रमते।।१०४।।

(हरिगीत)

परमार्थ है है ज्ञानमय, है समय-शुध-मुनि-केवली।
इसमें रहें थिर अचल जो, निर्वाण पावें वे मुनी।।१५१।।

ॐ ह्रीं ज्ञानात्मक-शरणप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि.स्वाहा।।९६।।

अब, आगामी दो गाथाओं में कहते हैं कि 'परमार्थस्वरूप आत्मा का आश्रय किये बिना व्रतादि सर्व क्रियाकाण्ड निरर्थक हैं' –

(हरिगीत)

परमार्थ से हों दूर, पर तप करें, व्रत-धारण करें।
सब बालतप हैं बालव्रत, वृषभादि सब जिनवर कहें।।१५२।।
व्रत-नियम सब धारण करें, तप-शील भी पालन करें।
पर दूर हों परमार्थ से, ना मुक्ति की प्राप्ति करें।।१५३।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्माऽऽश्रयरहित-व्रतादिनिरर्थकत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।९७।।

अब, 'ज्ञानस्वरूपी आत्मा का अनुभव ही मोक्ष का हेतु हैं, अतः उसी के अनुभव की प्रेरणा' आगामी कलश में देते हैं –

(रोला)

ज्ञानरूप ध्रुव अचल आतमा का ही अनुभव।
मोक्षरूप है स्वयं अत: वह मोक्षहेतु है।।

शेष भाव सब बन्धरूप हैं बन्धहेतु हैं।
इसीलिए तो अनुभव करने का विधान है।।१०५।।

ॐ ह्रीं मोक्षहेतुभूत-ज्ञानस्वरूपाऽऽत्मानुभवप्रेरक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।९८।।

अब, कहते हैं कि 'वास्तविक मोक्षमार्ग को नहीं जाननेवाले अज्ञानी ही पुण्य को चाहते हैं' –

(हरिगीत)

परमार्थ से हैं बाह्य वे, जो मोक्षमग नहीं जानते।
अज्ञान से भव-गमन-कारण, पुण्य को हैं चाहते।।१५४।।

ॐ ह्रीं पुण्यकर्म-पक्षपातिनः प्रतिबोधक-श्रीसमयसाराय नमःअर्घ्यं .... ।।९९।।

अब, आगामी गाथा में 'परमार्थ मोक्षमार्ग' को बताते हैं –

(हरिगीत)

जीवादि का श्रद्धान सम्यक्, ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।
रागादि का परिहार चारित – यही मुक्तिमार्ग है।।१५५।।

ॐ ह्रीं परमार्थमोक्षमार्गप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं .... ।।१००।।

अब, 'परमार्थ का आश्रय करनेवाले सन्तों के ही कर्मक्षय होता है', यह इस आगामी गाथा में कहते हैं –

(हरिगीत)

विद्वानगण भूतार्थ तज, वर्तन करें व्यवहार में।
पर कर्म-क्षय तो कहा है, परमार्थ-आश्रित सन्त के।। १५६।।

ॐ ह्रीं कर्मक्षय-परमार्थकारणप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं.... ।।१०१।।

अब, आगे तीन कलशों में युक्ति सहित 'ज्ञानस्वभावरूप परिणमन को ही मोक्ष का कारण और शुभाशुभभावरूप परिणमन को बन्ध का कारण', सिद्ध करते हुए कर्म का निषेध करते हैं –

(दोहा)

ज्ञानभाव का परिणमन, ज्ञानभावमय होय।
एकद्रव्य-स्वभाव यह, हेतु मुक्ति का होय।।१०६।।

कर्मभाव का परिणमन, ज्ञानरूप ना होय।
द्रव्यान्तर-स्वभाव यह, इससे मुकति न होय।।१०७।।

बन्धस्वरूपी कर्म यह, शिवमग-रोकनहार।
इसीलिए अध्यात्म में, है निषिद्ध शत वार।।१०८।।

ॐ ह्रीं मोक्षमार्गतिरोधायीकर्मनिषेधक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं... ।।१०२।।

अब, आगामी तीन गाथाओं में 'सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र – इन मोक्ष के हेतुओं के नाशक मिथ्यात्व, अज्ञान और कषाय को उदाहरण सहित समझाते हैं' –

(हरिगीत)

ज्यों श्वेतपन हो नष्ट पट का, मैल के संयोग से।
सम्यक्त्व भी त्यों नष्ट हो, मिथ्यात्व-मल के लेप से।।१५७।।

ज्यों श्वेतपन हो नष्ट पट का, मैल के संयोग से।
सद्ज्ञान भी त्यों नष्ट हो, अज्ञान-मल के लेप से।।१५८।।

ज्यों श्वेतपन हो नष्ट पट का, मैल के संयोग से।
चारित्र भी त्यों नष्ट होय, कषाय-मल के लेप से।।१५९।।

ॐ ह्रीं रत्नत्रयनिषेधक-दृष्टान्तप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं.. ।।१०३।।

अब, आगे 'शुभाशुभकर्म को केवल बन्ध का कारण ही नहीं, बल्कि स्वयं बन्धस्वरूप निरूपित करते हैं' –

(हरिगीत)

सर्वदर्शी सर्वज्ञानी, कर्मरज आछन्न हो।
संसार को सम्प्राप्त कर, सबको न जाने सर्वतः।।१६०।।

ॐ ह्रीं कर्मणः स्वयं बन्धस्वरूपत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।१०४।।

अब, आगे तीन गाथाओं में 'मोक्षमार्गस्वरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को रोकनेवाले कर्मों को बताते हैं' –

(हरिगीत)

सम्यक्त्व-प्रतिबन्धक करम, मिथ्यात्व जिनवर ने कहा।
उसके उदय से जीव, मिथ्यादृष्टि होता है सदा।।१६१।।

सद्ज्ञान-प्रतिबन्धक करम, अज्ञान जिनवर ने कहा।
उसके उदय से जीव, अज्ञानी बने यह जानना।।१६२।।

चारित्र-प्रतिबन्धक करम, जिन ने कषायों को कहा।
उसके उदय से जीव, चारित्रहीन हो यह जानना।।१६३।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रप्रतिबन्धक-कर्मप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१०५।।

अब, कहते हैं कि 'जब समस्त कर्म त्याग करने योग्य ही है, तब उनमें पुण्य-पाप का भेद करना उचित ही नहीं है' –

(हरिगीत)

त्याज्य ही हैं जब, मुमुक्षु के लिए सब कर्म ये।
तब पुण्य एवं पाप की, यह बात करनी किसलिए?।।

निज आतमा के लक्ष्य से, जब परिणमन हो जाएगा।
निष्कर्म में ही रस जगे, तब ज्ञान दौड़ा आयगा।।१०९।।

ॐ ह्रीं पुण्यपापयोः समानहेयत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं .. ।।१०६।।

अब, आगामी दो कलशों में यह कहते हैं कि 'यद्यपि पुण्यभावरूप कर्म भी मुक्तिमार्ग का विरोधी भाव है, तथापि जब तक पूर्ण कर्मविरति नहीं होती है, तब तक ज्ञानधारा और कर्मधारा एक साथ रहने में कोई विरोध नहीं है' –

(हरिगीत)

यह कर्म-विरति जब तलक, ना पूर्णता को प्राप्त हो।
हाँ, तब तलक यह, कर्मधारा-ज्ञानधारा साथ हो।।
अवरोध इसमें है नहीं, पर कर्मधारा बन्धमय।
मुक्ति-मारग एक ही है, ज्ञानधारा मुक्तिमय।।११०।।
कर्मनय के पक्षपाती, ज्ञान से अनभिज्ञ हों।
ज्ञाननय के पक्षपाती, आलसी स्वच्छन्द हों।।
जो ज्ञानमय हों परिणमित, परमाद के वश में न हों।
कर्म-विरहित जीव वे, संसार-सागर पार हों।।१११।।

ॐ ह्रीं कर्मनय-ज्ञाननय-एकान्तनिषेधप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१०७।।

अब, इस अधिकार के अन्त में आचार्य श्री अमृतचन्द्रदेव, 'शुभ-अशुभ के भेद को दूर करनेवाले सम्यग्ज्ञान की महिमा' करते हैं –

(हरिगीत)

जग शुभ-अशुभ में भेद माने मोह-मदिरा-पान से।
पर भेद इनमें है नहीं, जाना है सम्यग्ज्ञान से ।।
यह ज्ञानज्योति तम-विरोधी, खेले केवलज्ञान से।
जयवन्त हो इस जगत् में, जगमगै आतमज्ञान से।।११२।।

ॐ ह्रीं शुभाशुभभेदनिषेधक-श्रीसम्यग्ज्ञानाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा ।।१०८।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

जयमाला

(दोहा)

कर्ता-कर्म विभाव की, चर्चा के उपरान्त।
पुण्य-पाप की एकता, का करते व्याख्यान।।१।।

पापकर्म ज्यों कर्म है, पुण्यकर्म भी कर्म।
दोनों ही तो कर्म हैं, इनमें कोइ न धर्म।।२।।

(रोला)

पुण्य भला अर पाप बुरा सारा जग कहता।
पर निश्चय से इनमें कोई भेद नहीं है।।
कर्मबन्ध के कारण तो दोनों ही होते।
कर्मबन्ध कटने का कारण कोई नहीं है।।३।।

सोने की बेड़ी पुण्य, पाप लोहे की बेड़ी।
पर दोनों बन्धन का कारण ही होती हैं।।
दोनों में से कोई नहीं मुक्ति का कारण।
परम सत्य का उद्घाटन जिनवाणी करती।।४।।

पुण्योदय से मिलती हमें भोग सामग्री।
उसे भोगने से बँधता है पाप निरन्तर।।
पापोदय से सभी भयंकर दुख को भोगें।
इस तरह पुण्य भी हो जाता दुखों का कारण।।५।।

पुण्य-पाप है कर्म जाति के जुड़वा भाई।
दोनों से ही कर्मबन्ध निश्चित होता है।।
अरे! धर्म तो है अबन्ध का कारण भाई।
पुण्य धर्म कैसे हो सकता बोलो भाई।।६।।

अरे! पुण्य जो कर्म आज वह धर्म बन रहा।
जो है पूरण हेय किन्तु आदेय बन रहा।।
उपादेय तो एकमात्र बस! वीतरागता।
परम धरम है एकमात्र यह वीतरागता।। ७ ।।

रागभाव में धर्म नहीं है निश्चित जानो।
रागभाव तो भव का कारण निश्चित मानो।।
करो राग का त्याग राग है अपना वैरी।
परमधर्म है वीतरागता भव की वैरी।। ८ ।।

(दोहा)

पुण्य-पाप को त्याग कर, धारो अपना भाव।
पुण्य-पाप अधिकार का, इतना ही है सार।। ९ ।।

ॐ ह्रीं समयसारे पुण्य-पापैकत्वप्रतिपादक-श्रीपुण्यपापाधिकाराय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्य-पाप के त्याग की, महिमा अपरम्पार।
पुण्य-पाप को त्याग कर, हो जावो भव-पार।। १०।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

५

आस्रव-संवर अधिकार पूजन

स्थापना

(दोहा)

पुण्य-पाप के भाव सब, हैं आस्रव दुखकार।
यह आतम आस्रव रहित, परम धरम सुखकार।। १।।

अपनापन शुद्धात्म में, अपने में ही लीन।
होना ही संवर कहा, जिनवर परम प्रवीण।। २।।

मुक्तिमूल संवर कहा, आस्रव है भवमूल।
संवर को अपनाइये, जो चाहो भवकूल।। ३।।

ॐ ह्रीं आस्रव-संवरतत्त्वप्ररूपक-आस्रव-संवराधिकारौ अत्र अवतरत-अवतरत संवौषट्।

ॐ ह्रीं आस्रव-संवरतत्त्वप्ररूपक-आस्रव-संवराधिकारौ अत्र तिष्ठत-तिष्ठत ठः ठः।

ॐ ह्रीं आस्रव-संवरतत्त्वप्ररूपक-आस्रव-संवराधिकारौ अत्र मम सन्निहितो भवत-भवत वषट्। (इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(रोला)

जल

यह जल परम पवित्र, आतमा को धोता है।
निर्मल जल से आत्मभाव, निर्मल होता है।।
छोड़ दीजिये दुःखरूप आस्रव भावों को।
ग्रहण कीजिये सुख स्वरूप संवर भावों को।।

ॐ ह्रीं आस्रव-संवरतत्त्वप्ररूपक -आस्रव-संवराधिकाराभ्यां जन्मजरामत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

अरे! आतमा चन्दन-सम शीतल होता है।
भव-भव का भवताप-हरण मंगल होता है।।
छोड़ दीजिये दुःखरूप आस्रव भावों को।
ग्रहण कीजिये सुख स्वरूप संवर भावों को।।

ॐ ह्रीं आस्रव-संवरतत्त्वप्ररूपक -आस्रव-संवराधिकाराभ्यां संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत

अरे! आतमा अक्षत-सा अक्षत होता है।
अक्षत पद की प्राप्ति हेतु अक्षत होता है।।
छोड़ दीजिये दुःखरूप आस्रव भावों को।
ग्रहण कीजिये सुख स्वरूप संवर भावों को।।

ॐ ह्रीं आस्रवसंवरतत्त्वप्ररूपक-आस्रवसंवराधिकाराभ्यां अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं ...।

पुष्प

सुर-तरु पुष्पों के समान जो सुन्दरतम है।
पावन आतमराम परम पावन मनहर है।।
छोड़ दीजिये दुःखरूप आस्रव भावों को।
ग्रहण कीजिये सुख स्वरूप संवर भावों को।।

ॐ ह्रीं आस्रव-संवरतत्त्वप्ररूपक -आस्रव-संवराधिकाराभ्यां कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नैवेद्य

नानाविध नैवेद्य सरस अपने भावों के।
विध–विध के पकवान बनाये निजभावों के।।
छोड़ दीजिये दुःखरूप आस्रव भावों को।
ग्रहण कीजिये सुख स्वरूप संवर भावों को।।

ॐ ह्रीं आस्रव-संवरतत्त्वप्ररूपक -आस्रव-संवराधिकाराभ्यां क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप

स्वपरप्रकाशक दीप विविध रत्नों की रचना।
रे! मोह तिमिर का सर्वनाश करने को अपना ।।
छोड़ दीजिये दुःखरूप आस्रव भावों को।
ग्रहण कीजिये सुख स्वरूप संवर भावों को ।।

ॐ ह्रीं आस्रव-संवरतत्त्वप्ररूपक -आस्रव-संवराधिकाराभ्यां मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप

दशधर्मों की धूप दशांगी लेकर आया।
धूपायन में अरे! जला कर्मों को लाया ।।
छोड़ दीजिये दुःखरूप आस्रव भावों को।
ग्रहण कीजिये सुख स्वरूप संवर भावों को ।।

ॐ ह्रीं आस्रव-संवरतत्त्वप्ररूपक-आस्रव-संवराधिकाराभ्यां अष्ट-कर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

उत्तम फल पाने को उत्तम फल ले आया।
अनुपम अद्‌भुत शान्तिरूप उत्तम फल पाया ।।
छोड़ दीजिये दुःखरूप आस्रव भावों को।
ग्रहण कीजिये सुखस्वरूप संवर भावों को ।।

ॐ ह्रीं आस्रव-संवरतत्त्वप्ररूपक-आस्रवसंवराधिकाराभ्यां मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

संवरमय अर्घ्य अनर्घ्य निरोधक राग-द्वेष का।
रुक जाता है स्वयं अरे! कर्मों का आस्रव ।।
छोड़ दीजिये दुःखरूप आस्रव भावों को।
ग्रहण कीजिये सुख स्वरूप संवर भावों को ।।

ॐ ह्रीं आस्रव-संवरतत्त्वप्ररूपक -आस्रव-संवराधिकाराभ्यां अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा। (इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अर्घ्यावली

।।आस्रव अधिकार।।

(दोहा)

पुण्य-पाप के भाव सब, हैं आस्रव दुःखकार।
यह आतम आस्रव रहित, परम धरम सुखकार।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

इस अधिकार के आरम्भ में आचार्य अमृतचन्द्रदेव, 'आस्रव को रंगमंच पर प्रवेश करा कर, आस्रवभाव को परास्त करनेवाले सम्यग्ज्ञान की महिमा' करते हैं –

(हरिगीत)

सारे जगत् को मथ रहा, उन्मत्त आस्रवभाव यह।
समरांगण में समागत, मदमत्त आस्रवभाव यह।।
मर्दन किया रणभूमि में, इस भाव को जिस ज्ञान ने।
वह धीर है गम्भीर है, हम रमें नित उस ज्ञान में।।११३।।

ॐ ह्रीं आस्रवभावनिरोधक-श्रीसम्यग्ज्ञानाय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१०९।।

अब, आगामी दो गाथाओं में 'आस्रवभाव का स्वरूप' कहते हैं –

(हरिगीत)

मिथ्यात्व अविरति योग और, कषाय चेतन-अचेतन।
चितरूप जो हैं वे सभी, चैतन्य के परिणाम हैं।।१६४।।
ज्ञानावरण आदिक अचेतन, कर्म के कारण बने।
उनका भी तो कारण बने, रागादि कारक जीव यह।।१६५।।

ॐ ह्रीं आस्रवतत्त्वस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं...।।११०।।

अब, 'सम्यग्ज्ञानी को आस्रव नहीं है', ऐसा अगली गाथा में कहते हैं –

(हरिगीत)

है नहीं आस्रव-बन्ध, क्योंकि आस्रवों का रोध है।
सद्दृष्टि उनको जानता, जो कर्म पूर्व निबद्ध हैं।।१६६।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दृष्टेराऽऽस्रवाऽभावप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं ..।।१११।।

अब, यह कहते हैं कि 'वास्तविक आस्रव तो मोह-राग-द्वेष ही हैं' –

(हरिगीत)

जीवकृत रागादि ही, बन्धक कहे हैं सूत्र में।
रागादि से जो रहित वह, ज्ञायक अबन्धक जानना।।१६७।।

ॐ ह्रीं मोह-राग-द्वेषान् एवाऽऽस्रवप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।११२।।

अब, 'ज्ञानी के रागादिभावों से अमिश्रितभाव ही उत्पन्न होता है और इसी कारण उसे बन्ध नहीं होता'- यह दृष्टान्तपूर्वक गाथा में कहते हैं –

(हरिगीत)

पक्व-फल जिस तरह गिर कर, नहीं जुड़ता वृक्ष से।
बस! उस तरह ही कर्म खिर कर, नहीं जुड़ते जीव से।।१६८।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञानिनः रागाद्यऽसंकीर्णभावप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं..।।११३।।

अब, आगामी कलश में कहते हैं कि 'ज्ञानमय भाव, सर्व भावास्रवों के अभावस्वरूप' होते हैं –

(हरिगीत)

इन द्रव्य कर्मों के पहाड़ों के निरोधक भाव जो।
हैं राग-द्वेष-विमोह बिन, सद्ज्ञान निर्मित भाव जो।।
भावास्रवों से रहित, इस जीव के निजभाव हैं।
वे ज्ञानमय शुद्धात्ममय, निज आत्मा के भाव हैं।।११४।।

ॐ ह्रीं श्री भावाऽऽस्रवाऽभावरूप-ज्ञानमयभावप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।११४।।

अब, 'ज्ञानी जीवों के द्रव्यास्रवों का अभाव है', यह बात आगामी गाथा और एक कलश[१] में कहते हैं –

(हरिगीत)

जो बँधे थे भूत में वे कर्म पृथ्वीपिण्ड सम।
वे सभी कर्म शरीर से हैं, बद्ध सम्यग्ज्ञानी के।।१६९।।

(दोहा)

द्रव्यास्रव से भिन्न है, भावास्रव को नाश।
सदा ज्ञानमय निरास्रव, ज्ञायकभाव प्रकाश।।११५।।

ॐ ह्रीं ज्ञानिनः द्रव्याऽऽस्रवाऽभावप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।११५।।

अब, 'बन्धनबद्ध ज्ञानी निरास्रव कैसे हो सकता है?' इस प्रश्न का उत्तर आगामी तीन गाथाएँ एवं एक कलश में देते हैं –

(हरिगीत)

प्रतिसमय विध विध कर्म को, सब ज्ञान-दर्शन गुणों से।
बाँधे चतुर्विध प्रत्यय ही ज्ञानी अबंधक इसलिए।।१७०।।

ज्ञानगुण का परिणमन जब हो जघन्यहि रूप में।
अन्यत्व में परिणमे तब इसलिए ही बंधक कहा।।१७१।।

ज्ञान-दर्शन-चरित गुण जब जघनभाव से परिणमे।
तब विविध पुद्गलकर्म से, इसलोक में ज्ञानी बँधे।।१७२।।

(कुण्डलिया)

स्वयं सहज परिणाम से, कर दीना परित्याग।
सम्यग्ज्ञानी जीव ने, बुद्धिपूर्वक राग।।
बुद्धिपूर्वक राग, त्याग दीना है जिसने।
और अबुद्धिक राग, त्याग करने को जिसने।।
निज-शक्ति-स्पर्श, प्राप्त कर पूर्णभाव को।
रहे निरास्रव सदा, उखाड़े परपरिणति को।।११६।।

ॐ ह्रीं ज्ञानिनः निराऽऽस्रवत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।११६।।

अब, 'समस्त द्रव्यास्रवों की सन्तति विद्यमान होने पर भी ज्ञानी निरास्रव कैसे हो सकता है?' – ऐसा प्रश्न, एक कलश के माध्यम से उठाते हुए आगामी चार गाथाओं एवं एक कलश के द्वारा इसका उत्तर देते हैं –

(दोहा)

द्रव्यास्रव की सन्तति, विद्यमान सम्पूर्ण।
फिर भी ज्ञानी निरास्रव, कैसे हो परिपूर्ण?।।११७।।

(हरिगीत)

पहले बँधे सद्दृष्टिओं के, कर्मप्रत्यय सत्त्व में।
उपयोग के अनुसार वे ही, कर्म का बन्धन करें।।१७३।।

अनभोग्य हो उपभोग्य हों, वे सभी प्रत्यय जिसतरह।
ज्ञान–आवरणादि वसुविध, कर्म बाँधे उसतरह।।१७४।।

बाल वनिता की तरह, वे सत्त्व में अनभोग्य हैं।
पर तरुण वनिता की तरह, उपभोग्य होकर बाँधते।।१७५।।

बस इसलिए सद्दृष्टियों को, अबन्धक जिन ने कहा।
क्योंकि आस्रवभाव बिन, प्रत्यय न बन्धन कर सके।।१७६।।

(हरिगीत)

पूर्व में जो द्रव्य प्रत्यय बँधे थे अब वे सभी।
निजकाल पाकर उदित होंगे, सुप्त सत्ता में अभी।।
यद्यपि वे हैं अभी पर, राग–द्वेषाभाव से।
अन्तर अमोही ज्ञानियों को, बन्ध होता है नहीं।।११८।।

ॐ ह्रीं द्रव्यप्रत्यय-सन्ततौ अपि ज्ञानिनः निराऽऽस्रवत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।११७।।

अब, 'ज्ञानी के मोह-राग-द्वेष नहीं होने से वह अबन्धक है', यह एक कलश और दो गाथाओं में कहते हैं –

(दोहा)

राग–द्वेष अर मोह ही, केवल बन्धक भाव।
ज्ञानी के ये हैं नहीं, तातैं बन्ध अभाव।।११९।।

(हरिगीत)

रागादि आस्रवभाव जो, सद्दृष्टियों के वे नहीं।
इसलिए आस्रवभाव बिन, प्रत्यय न हेतु बन्ध के।।१७७।।

अष्टविध कर्मों के कारण, चार प्रत्यय ही कहे।
रागादि उनके हेतु हैं, उनके बिना बन्धन नहीं।।१७८।।

ॐ ह्रीं मोह-राग-द्वेषाभावे ज्ञानिनः अबन्धप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।११८।।

अब, आगामी दो कलशों में 'शुद्धनय के ग्रहण से लाभ एवं उसके त्याग से होनेवाली हानि से परिचित कराते हैं' –

(हरिगीत)

सदा उद्धत चिह्न वाले, शुद्धनय अभ्यास से।
निज आत्म की एकाग्रता के, ही सतत अभ्यास से।।
रागादि विरहित चित्तवाले, आत्मकेन्द्रित ज्ञानिजन।
बन्ध विरहित अर अखण्डित, आत्मा को देखते।।१२०।।
च्युत हुए जो शुद्धनय से, बोध विरहित जीव वे।
पहले बँधे द्रव्यकर्म से, रागादि में उपयुक्त हो।।
अरे! विचित्र विकल्पवाले, और विविध प्रकार के।
विपरीतता से भरे विध विध, कर्म का बन्धन करें।।१२१।।

ॐ ह्रीं शुद्धनयस्य ग्रहण-त्यागयोः लाभ-हानिप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। ११९।।

अब, 'कर्मबन्ध प्रक्रिया' को दृष्टान्तपूर्वक दो गाथाओं में समझाते हैं –

(हरिगीत)

जगजन ग्रसित आहार ज्यों, जठराग्नि के संयोग से।
परिणमित होता वसा में, मज्जा रुधिर माँसादि में।।१७९।।
शुद्धनय परिहीन ज्ञानी, के बँधे जो पूर्व में।
वे कर्म प्रत्यय ही जगत में, बाँधते हैं कर्म को।।१८०।।

ॐ ह्रीं शुद्धनयपरिहीन-ज्ञानिनः अबन्धप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२०।।

अब, इस अधिकार का उपसंहार करते हुए आगामी दो कलशों में 'शुद्धनय के विषयभूत आत्मा के आश्रय की प्रेरणा' देते हैं –

(हरिगीत)

इस कथन का सार यह, कि शुद्धनय उपादेय है।
अर शुद्धनय द्वारा निरूपित, आत्मा ही ध्येय है।।
क्योंकि इसके त्याग से ही, बन्ध और अशान्ति है।
इसके ग्रहण में आत्मा की मुक्ति एवं शान्ति है।।१२२।।

धीर और उदार महिमा, युत अनादि-अनन्त जो।
उस ज्ञान में थिरता करे, अर कर्मनाशक भाव जो।।
सद्ज्ञानियों को कभी भी, वह शुद्धनय ना हेय है।
विज्ञानघन इक अचल आतम, ज्ञानियों का ज्ञेय है।।१२३।।

ॐ ह्रीं शुद्धनयप्रयोजक-आत्मानुभवप्रेरक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२१।।

अब, आस्रव अधिकार का समापन करते हुए पुनः श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव, 'सम्यग्ज्ञानियों की महिमा' करते हैं –

(हरिगीत)

निज आतमा जो परम वस्तु, उसे जो पहिचानते।
अर उसी में जो नित रमें अर, उसे ही जो जानते।।
वे आस्रवों का नाश कर, नित रहें आतम ध्यान में।
वे रहें निज में किन्तु, लोकालोक उनके ज्ञान में।।१२४।।

ॐ ह्रीं सम्यग्ज्ञानीमहिमाप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२२।।   (इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

।। संवर अधिकार ।।

(दोहा)

अपनापन शुद्धात्म में, अपने में ही लीन।
होना ही संवर कहा, जिनवर परम प्रवीण।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

इस अधिकार के प्रारम्भ में आचार्य अमृतचन्द्रदेव, 'आस्रव को परास्त करके संवर को रंगमंच पर प्रस्तुत करके उसकी महिमा' करते हैं –

(हरिगीत)

संवरजयी मद-मत्त आस्रव, भाव का अपलाप कर।
व्यावृत्य हो पररूप से, सद्बोध संवर भास्कर।।
प्रगटा परम आनन्दमय, निज आत्म के आधार से।
सद्ज्ञानमय उज्ज्वल धवल, परिपूर्ण निजरस-भार से।।१२५।।

ॐ ह्रीं आस्रवं विजित्य संवरप्रापक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं... ।।१२३।।

यहाँ, सर्वप्रथम कुन्दकुन्दाचार्यदेव, 'सम्पूर्ण कर्मों केसंवर करने के उत्कृष्ट उपायभूत भेदविज्ञान का अभिनन्दन' करते हैं –

(हरिगीत)

उपयोग में उपयोग है, क्रोधादि में उपयोग ना।
बस! क्रोध में है क्रोध पर, उपयोग में है क्रोध ना।।१८१।।
अष्टविध द्रव्यकर्म में, नोकर्म में उपयोग ना।
इस ही तरह उपयोग में भी, कर्म ना नोकर्म ना।।१८२।।
विपरीतता से रहित इस विधि, जीव को जब ज्ञान हो।
उपयोग के अतिरिक्त कुछ भी, ना करे तब आतमा।।१८३।।

ॐ ह्रीं भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म-भेदविज्ञानप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२४।।

अब, आगामी कलश में 'राग और ज्ञान में भेदविज्ञान' कराते हैं –

(हरिगीत)

यह ज्ञान है चिद्रूप, किन्तु राग तो जड़रूप है।
मैं ज्ञानमय आनन्दमय, पर राग तो पररूप है।।
इस तरह के अभ्यास से, जब भेदज्ञान उदित हुआ।
आनन्दमय रसपान से, तब मनोभाव मुदित हुआ।।१२६।।

ॐ ह्रीं ज्ञानरागयोः भेदविज्ञानकारक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं.... ।।१२५।।

अब, 'भेदविज्ञान से ही शुद्धात्मा की उपलब्धि किस प्रकार होती है' इसका उत्तर उदाहरण सहित दो गाथाओं में देते हैं –

(हरिगीत)

ज्यों अग्नि से संतप्त सोना स्वर्णभाव नहीं तजे।
त्यों कर्म से संतप्त ज्ञानी ज्ञानभाव नहीं तजे।।१८४।।

जानता यह ज्ञानि पर अज्ञानतम आछन्न जो।
वे आतमा जानें न मानें राग को ही आतमा।।१८५।।

ॐ ह्रीं भेदविज्ञानादेव शुद्धात्मोपलम्भप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२६।।

अब, 'शुद्धात्मा की उपलब्धि से ही संवर किसप्रकार होता है', यह एक गाथा व एक कलश में कहते हैं –

(हरिगीत)

जो जानता मैं शुद्ध हूँ, वह शुद्धता को प्राप्त हो।
जो जानता अविशुद्ध, वह अविशुद्धता को प्राप्त हो।।१८६।।

(रोला)

भेदज्ञान के इस अविरल धारा-प्रवाह से।
कैसे भी कर प्राप्त करे जो शुद्धातम को।।
और निरन्तर उसमें ही थिर होता जावे।
पर परिणति को त्याग निरन्तर शुध हो जावे।।१२७।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्मोपलम्भादेव संवरप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२७।।

अब, तीन गाथाओं में 'संवर किसप्रकार होता है' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

पुण्य एवं पाप से, निज आतमा को रोक कर।
अन्य आशा से विरत हो, ज्ञान-दर्शन में रहें।।१८७।।

विरहित करम-नोकरम से, निज आत्म के एकत्व को।
निज आतमा को स्वयं ध्यावें, सर्व संग-विमुक्त हो।।१८८।।

ज्ञान-दर्शन मय निजातम, को सदा जो ध्यावते।
अत्यल्प काल स्वकाल में, वे सर्व कर्म-विमुक्त हों।।१८९।।

(रोला)

भेदज्ञान की शक्ति से निजमहिमा रत को।
शुद्धतत्त्व की उपलब्धि निश्चित हो जावे।।
शुद्धतत्त्व की उपलब्धि होने पर उसके।
अतिशीघ्र ही सब कर्मों का क्षय हो जावे।। १२८।।

ॐ ह्रीं श्री संवरविधिप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १२८।।

अब, 'संवर होने का क्रम' तीन गाथाओं में कहते हैं –

(हरिगीत)

बंध के कारण कहे हैं भाव अध्यवसान ही।
मिथ्यात्व अर अज्ञान अविरत–भाव एवं योग भी।। १९०।।

इनके बिना है आस्रवों का रोध सम्यग्ज्ञानि के।
अर आस्रवों के रोध से ही कर्म का भी रोध है।। १९१।।

कर्म के अवरोध से नोकर्म का अवरोध हो।
नोकर्म के अवरोध से संसार का अवरोध हो।। १९२।।

ॐ ह्रीं श्री संवरक्रमप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।। १२९।।

अब, इस संवर अधिकार के अन्त में उपसंहार करते हुए आचार्य श्री अमृतचन्द्रदेव, चार कलशों में 'भेदज्ञान की महिमा' करते हैं –

(रोला)

आत्मतत्त्व की उपलब्धि हो भेदज्ञान से,
आत्मतत्त्व की उपलब्धि से संवर होता।।

इसीलिए तो सच्चे दिल से नितप्रति करना।
अरे भव्यजन! भव्यभावना भेदज्ञान की।।१२९।।

अरे भव्यजन ! भव्यभावना भेदज्ञान की।
सच्चे मन से बिन विराम के तबतक भाना।।
जबतक पर से हो विरक्त यह ज्ञान ज्ञान में।
ही थिर न हो जाय अधिक क्या कहें जिनेश्वर।।१३०।।

अबतक जो भी हुए सिद्ध या आगे होंगे।
महिमा जानो एक मात्र सब भेदज्ञान की।।
और जीव जो भटक रहे हैं भवसागर में।
भेदज्ञान के ही अभाव से भटक रहे हैं।।१३१।।

भेदज्ञान से शुद्धतत्त्व की उपलब्धि हो।
शुद्धतत्त्व की उपलब्धि से रागनाश हो।।
रागनाश से कर्मनाश अर कर्मनाश से।
ज्ञान ज्ञान में थिर होकर शाश्वत हो जावे।। १३२।।

ॐ ह्रीं भेदविज्ञानमहिमाप्ररूपक-समयसाराय नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१३०।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

जयमाला

(दोहा)

आस्रवभाव अभाव कर, प्रगटे संवरभाव।
आस्रवभाव विभाव है, संवरभाव स्वभाव।।१।।

(हरिगीत)

मिथ्यात्व अविरति योग और कषाय के परिणाम हैं।
ये सभी कारण बन्ध के हैं, सभी आस्रवभाव हैं।।
बन्ध रुकना इन सभी का, अरे! संवर जानना।
और होना इन सभी का, आस्रव ही मानना।।२।।

हैं हेय आस्रवभाव सब, उपादेय संवर जानना।
ज्ञेय लोकालोक हैं अर, ध्येय निज शुद्धातमा।।
आस्रवों को छोड़ संवर भाव को अपनाइये।
जान लोकालोक को निज आतमा को ध्याइये।।३।।

निज आतमा को ध्याइये, निज आत्म में रम जाइये।
निज आतमा में लीन हो निज आत्म में जम जाइये।।
निज आत्म में जम जाइये, निज आत्म में रम जाइये।
निज आत्मा में समाकर, निज आत्ममय हो जाइये।। ४।।

(दोहा)

आतम अपना भाव है, आतम में रम जाँय।
आतम आतम जपत ही, आतम में जम जाँय।।५।।

ॐ ह्रीं श्री आस्रव-संवराधिकाराभ्यां जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

देखें आतमराम को, जानो आतमराम।
आतम का अनुभव करो, ध्यावो आतमराम।।६।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

६

निर्जरा अधिकार पूजन

स्थापना

(दोहा)

शुद्धातम में रत रहो, यही श्रेष्ठ आचार।
शुद्धातम की साधना, कही निर्जरा सार।।१।।

(हरिगीत)

शुद्धात्मा की रुचि संवर, साधना है निर्जरा।
ध्रुवधाम निज भगवान की, आराधना है निर्जरा।।
निर्भय दशा है निर्जरा, निर्मल दशा है निर्जरा।
निज आतमा की ओर बढ़ती, भावना है निर्जरा।।२।।

ॐ ह्रीं निर्जरातत्त्वप्रतिपादक-निर्जराधिकार! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं निर्जरातत्त्वप्रतिपादक-निर्जराधिकार! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं निर्जरातत्त्वप्रतिपादक-निर्जराधिकार! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्। (इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(वीर)

जल

जल का स्वभाव इस दुनिया में, मिथ्यामल धोनेवाला है।
निर्जरा शरण में यह बालक, मिथ्यामल धोने आया है।।
यह आतम की परिशुद्ध दशा, यह अद्भुत महिमाशाली है।
निर्जरा परम उपयोगी है, यह मुक्ति दिलाने वाली है।।

ॐ ह्रीं निर्जरातत्त्वप्रतिपादक-निर्जराधिकाराय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

निर्जरा ताप हरने वाली, भवतपहर चन्दन शीतल है।
भवताप शान्त करने को प्रभु! चरणों में आज महीतल है।।
यह आतम की परिशुद्ध दशा, यह अद्भुत महिमाशाली है।
निर्जरा परम उपयोगी है, यह मुक्ति दिलाने वाली है।।

ॐ ह्रीं निर्जरातत्त्वप्रतिपादक-निर्जराधिकाराय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत

भगवान आतमा अक्षत है, अक्षत पर्याय प्रगट होगी।
और मोक्ष के पहले तो, निर्जर पर्याय प्रगट होगी।।
यह आतम की परिशुद्ध दशा, यह अद्भुत महिमाशाली है।
निर्जरा परम उपयोगी है, यह मुक्ति दिलाने वाली है।।

ॐ ह्रीं निर्जरातत्त्वप्रतिपादक-निर्जराधिकाराय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

यह काम कामना का प्रतीक, यह पुष्प-बाण अर्पण करके।
सम्पूर्ण कामनाओं को मैं, समभावों से तर्पण करके।।
यह आतम की परिशुद्ध दशा, यह अद्भुत महिमाशाली है।
निर्जरा परम उपयोगी है, यह मुक्ति दिलाने वाली है।।

ॐ ह्रीं निर्जरातत्त्वप्रतिपादक-निर्जराधिकाराय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नैवेद्य

यह क्षुधा-वेदना का प्रतीक, नैवेद्य सरस अर्पण करके।
अब तो शिवपुर को जाऊँ मैं, चरणों में यह अर्पण करके।।
यह आतम की परिशुद्ध दशा, यह अद्भुत महिमाशाली है।
निर्जरा परम उपयोगी है, यह मुक्ति दिलाने वाली है।।

ॐ ह्रीं निर्जरातत्त्वप्रतिपादक-निर्जराधिकाराय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप

यह ज्ञान-प्रदीप आज लाया, मोहान्धकार हो नाश प्रभो।
हो केवलज्ञान-प्रकाश मुझे, जीवन में अब अज्ञान न हो।।
यह आतम की परिशुद्ध दशा, यह अद्भुत महिमाशाली है।
निर्जरा परम उपयोगी है, यह मुक्ति दिलाने वाली है।।

ॐ ह्रीं निर्जरातत्त्वप्रतिपादक-निर्जराधिकाराय मोहान्धकारविनाशयनाय दीपं... ।

धूप

रे! स्वयं जले यह धूप, स्वयं जलने से न बच पायेगी।
कर्म जलेंगे तभी प्रभो, जब आतम में रम जायेंगे।।
यह आतम की परिशुद्ध दशा, यह अद्भुत महिमाशाली है।
निर्जरा परम उपयोगी है, यह मुक्ति दिलाने वाली है।।

ॐ ह्रीं निर्जरातत्त्वप्रतिपादक-निर्जराधिकाराय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

फल

शिवफल तो तभी मिलेगा प्रभु,जब जगफल की वाँछा न रहे।
यदि शिवफल चाहो तो भाई, जगफल की वाँछा नहीं करो।।
यह आतम की परिशुद्ध दशा, यह अद्भुत महिमाशाली है।
------------निर्जरा परम उपयोगी है, यह मुक्ति दिलाने वाली है।।

ॐ ह्रीं निर्जरातत्त्वप्रतिपादक-निर्जराधिकाराय मोक्ष-फल-प्राप्तये फलं... ।

अर्घ्य

सबसे अनर्घ्य है मुक्तिरमा, निज में रमने से मिलती है।
पर में ही निशदिन रमे रहें, उनको मुक्ति ना मिलती है।।
यह आतम की परिशुद्ध दशा, यह अद्भुत महिमाशाली है।
निर्जरा परम उपयोगी है, यह मुक्ति दिलाने वाली है।।

ॐ ह्रीं निर्जरातत्त्वप्रतिपादक-निर्जराधिकाराय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अर्घ्यावली

(दोहा)

शुद्धातम में रत रहो, यही श्रेष्ठ आचार।
शुद्धातम की साधना, कही निर्जरा सार।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अब, आचार्य अमृतचन्द्रदेव, 'संवर के बाद निर्जरा को रंगभूमि में प्रवेश[1] कराते हैं और ज्ञानज्योति की महिमा करते हैं' –

(हरिगीत)

आगामी बन्धन रोकने, संवर सजग सन्नद्ध हो।
रागादि के अवरोध से जब, कमर कस के खड़ा हो।।
अर पूर्वबद्ध करम-दहन को निरजरा तैयार हो।
तब ज्ञानज्योति यह अरे! नित ही अमूर्च्छित क्यों न हो।।१३३।।[2]

ॐ ह्रीं संवरपूर्वकनिर्जराप्रापक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३१।।

यहाँ सर्वप्रथम आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव, 'द्रव्यनिर्जरा व भावनिर्जरा का स्वरूप' कहते हैं –

(हरिगीत)

चेतन-अचेतन द्रव्य का, उपभोग सम्यग्दृष्टि जन।
जो इन्द्रियों से करें वह सब, निर्जरा का हेतु है।।१९३।।

सुख-दुख नियम से हों सदा, परद्रव्य के उपभोग से।
अर भोगने के बाद सुख-दुख, निर्जरा को प्राप्त हों।।१९४।।

ॐ ह्रीं द्रव्य-भावनिर्जरास्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३२।।

अब, एक कलश और दो गाथाओं में उदाहरण सहित बताते हैं कि 'सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव, कर्मों को भोगते हुए भी कर्मों से बँधते नहीं, यह उनके ज्ञान और वैराग्य की महिमा है' –

(हरिगीत)

ज्ञानी बँधे ना कर्म से, सब कर्म करते-भोगते।
यह ज्ञान की सामर्थ्य अर, वैराग्य का बल जानिये।।१३४।।

(हरिगीत)

ज्यों वैद्यजन मरते नहीं हैं, जहर के उपभोग से।
त्यों ज्ञानिजन बँधते नहीं हैं, कर्म के उपभोग से।।१९५।।
ज्यों अरुचिपूर्वक मद्य पीकर, मत्त जन होते नहीं।
त्यों अरुचि से उपभोग करते, ज्ञानिजन बँधते नहीं।।१९६।।

ॐ ह्रीं ज्ञान-वैराग्यसामर्थ्यनिरूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं... ।।१३३।।

अब एक कलश व एक गाथा में यह कहते हैं कि 'वैराग्य के बल से ज्ञानी विषय-सेवन करते हुए भी उनका असेवक' ही है –

(दोहा)

बँधे न ज्ञानी कर्म से, बल विराग अर ज्ञान।
यद्यपि सेवें विषय को, तदपि असेवक जान।।१३५।।

(हरिगीत)

ज्यों प्रकरणगत चेष्टा करें पर, प्राकरणिक नहीं बनें।
त्यों ज्ञानिजन सेवन करें पर, विषय सेवक नहीं बनें।।१९७।।

ॐ ह्रीं ज्ञान-वैराग्यबलात् ज्ञानिनः विषयसेवनेऽपि असेवकस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३४।।

अब, आगामी कलश में यह कहते हैं कि 'ज्ञानी को नियम से ज्ञान व वैराग्य का बल' होता है –

(हरिगीत)

निजभाव को निज जान, अपनापन करे जो आतमा।
परभाव से हो भिन्न नित, निज में रमे जो आतमा।।
वे आतमा सद्दृष्टि उनके, ज्ञान अर वैराग्य बल।
हो नियम से यह जानिये, पहिचानिये निज आत्मबल।।१३६।।

ॐ ह्रीं श्रीसम्यग्दृष्टेः नियतज्ञान-वैराग्यशक्तिप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३५।।

अब, 'सम्यग्दृष्टि, स्व-पर को भिन्न जानता हुआ नियम से ज्ञान-वैराग्य सम्पन्न किसप्रकार होता है' - यह आगामी तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं -

(हरिगीत)

उदय कर्मों के विविध-विध, सूत्र में जिनवर कहें।
किन्तु वे मेरे नहीं, मैं एक ज्ञायकभाव हूँ ।।१९८।।
पुद्गल करम है राग, उसके उदय ये परिणाम हैं।
किन्तु ये मेरे नहीं, मैं एक ज्ञायकभाव हूँ ।।१९९।।
इसतरह ज्ञानी जानते, ज्ञायकस्वभावी आतमा।
कर्मोदयों को छोड़ते, निजतत्त्व को पहिचान कर ।।२००।।

ॐ ह्रीं स्वपरभेदविज्ञानसम्पन्न-श्रीसम्यग्दृष्टिप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।१३६।।

अब, आगामी कलश में कहते हैं कि 'सम्यग्दर्शन के बिना सच्चे अणुव्रत-महाव्रत भी नहीं होते, सच्ची समितियाँ भी नहीं होती' -

(हरिगीत)

मैं स्वयं सम्यग्दृष्टि हूँ, हूँ बन्ध से विरहित सदा।
यह मानकर अभिमान में, पुलकित वदन मस्तक उठा ।।
जो समिति आलम्बे, महाव्रत आचरें पर पापमय।
दिग्मूढ़ जीवों का अरे! जीवन नहीं अध्यात्ममय ।।१३७।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनाऽभावे महाव्रतादीनां निरर्थकत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।१३७।।

अब, 'रागी, सम्यग्दृष्टि क्यों नहीं होता?', यह दो गाथाओं में कहते हैं -

(हरिगीत)

अणुमात्र भी रागादि का, सद्भाव है जिस जीव के।
वह भले ही हो सर्व आगम-धर न जाने जीव को ।।२०१।।
जो न जाने जीव को, वे अजीव भी जानें नहीं।
कैसे कहें सद्दृष्टि जीवाजीव जब जानें नहीं? ।।२०२।।

ॐ ह्रीं भेदज्ञानाऽभावे सम्यग्दर्शनाऽभावप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।१३८।।

अब, आगामी कलश में आचार्य, 'अनादिकाल से मोहनींद में सोये हुये जीवों को निजपद के अनुभव की प्रेरणा' देते हैं –

(हरिगीत)

अपदपद में मत्त नित, अन्धे जगत् के प्राणियों!।
यह पद तुम्हारा पद नहीं, निज जानकर क्यों सो रहे?।।
जागो, इधर आओ, रहो नित, मगन परमानन्द में।
हो परमपदमय तुम स्वयं, तुम स्वयं हो चैतन्यमय।।१३८।।

ॐ ह्रीं अनादिमोहोपशान्त्यर्थं निजपदानुभवप्रेरक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३९।।

अब यहाँ आचार्य कुन्दकुन्ददेव, 'वह निजपद क्या है?' यह एक गाथा और एक कलश में बताते हैं –

(हरिगीत)

स्वानुभूतिगम्य है जो, नियत थिर निजभाव ही।
अपद पद सब छोड़ ग्रह वह, एक नित्यस्वभाव ही।।२०३।।

(हरिगीत)

अरे! जिसके सामने हों, सभी पद भासित अपद।
सब आपदाओं से रहित, आराध्य है वह ज्ञान पद।।१३९।।

ॐ ह्रीं स्वानुभूतिगम्य-निजपदप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४०।।

अब, 'ज्ञानस्वरूप निजपद ही निर्वाण का कारण है; अतः उसी के अनुभव की प्रेरणा' एक कलश और एक गाथा में देते हैं –

(हरिगीत)

उस ज्ञान के आस्वाद में ही, नित रमे जो आतमा।
अर द्वन्द्वमय आस्वाद में, असमर्थ है जो आतमा।।
आत्मानुभव के स्वाद में ही, मगन है जो आतमा।
सामान्यमय एकत्व को, धारण करे वह आतमा।।१४०।।

(हरिगीत)

मतिश्रुतावधिमन:पर्यय, और केवलज्ञान भी।
सब एक पद परमार्थ है, पा इसे जन शिवपद लहें।।२०४।।

ॐ ह्रीं ज्ञानस्वरूप-निजपदानुभवप्रेरक -श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४१।।

अब, आगामी कलश में कहते हैं कि 'चैतन्य-रत्नाकर एक होने पर भी अनेक होकर उछलता है' –

(हरिगीत)

सब भाव पी संवेदनाएँ, मत्त होकर स्वयं ही।
हों उछलती जिस भाव में, अद्भुत निधि वह आतमा।।
भगवान वह चैतन्य-रत्नाकर सदा ही एक है।
फिर भी अनेकाकार होकर, स्वयं में ही उछलता।।१४१।।

ॐ ह्रीं श्री एकानेकस्वरूप-चैतन्यरत्नाकरप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४२।।

अब, 'मोक्षपद की प्राप्ति ज्ञान से ही सम्भव है, किसी क्रियाकाण्ड से नहीं,' यह बात दो कलश और एक गाथा में कहते हैं –

(हरिगीत)

पंचाग्नि तप या महाव्रत, कुछ भी करो सिद्धि नहीं।
जाने बिना निज आतमा, जिनवर कहैं सब व्यर्थ हैं।।
मोक्षमय जो ज्ञानपद वह, ज्ञान से ही प्राप्त हो।
निज ज्ञानगुण के बिना, उसको कोई पा सकता नहीं।।१४२।।

(हरिगीत)

इस ज्ञानगुण के बिना जन, प्राप्ति न शिवपद की करें।
यदि चाहते हो मुक्त होना, ज्ञान का आश्रय करो।।२०५।।

(दोहा)

क्रियाकाण्ड से ना मिले, यह आतम अभिराम।
ज्ञानकला से सहज ही, सुलभ आतमाराम।।

अतः जगत् के प्राणियों! छोड़ जगत् की आश।
ज्ञानकला का ही अरे! करो नित्य अभ्यास।।१४३।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञानेनैव मोक्षप्राप्तिप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४३।।

अब, 'उत्तम सुख की प्राप्ति के लिए ज्ञानस्वरूपी आत्मा में ही सन्तुष्ट रहने की प्रेरणा' देते हैं –

(हरिगीत)

इस ज्ञान में ही रत रहो, सन्तुष्ट नित इसमें रहो।
बस! तृप्त भी इसमें रहो तो, परमसुख को प्राप्त हो।।२०६।।

ॐ ह्रीं श्री परमसुखप्रदायि-आत्मसन्तोषप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४४।।

'जो ज्ञानी, स्वयं को अचिन्त्यशक्ति चिन्मात्र चिन्तामणिरूप देव अनुभव करता है, वह कोई भी परिग्रह नहीं चाहता है;' यह कलश द्वारा कहते हैं –

(हरिगीत)

अचिन्त्यशक्ति धारक अरे! चिन्तामणि चैतन्य।
सिद्धारथ यह आतमा, ही है कोई न अन्य।।
सभी प्रयोजन सिद्ध हैं, फिर क्यों पर की आश।
ज्ञानी जाने यह रहस करे न पर की आश।।१४४।।

ॐ ह्रीं अचिन्त्यात्ममहिमाप्रकाशक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४५।।

अब, 'ज्ञानी, परिग्रह को क्यों नहीं अपनाता है?' यह तर्कसहित तीन गाथाओं में कहते हैं –

(हरिगीत)

आतमा ही आतमा का परिग्रह – यह जानकर।
'परद्रव्य मेरा है' – बताओ, कौन बुध ऐसा कहे? ।।२०७।।

यदि परिग्रह मेरा बने तो, मैं अजीव बनूँ अरे!।
पर मैं तो ज्ञायकभाव हूँ, इसलिए पर मेरे नहीं।।२०८।।

छिद जाय या ले जाय कोइ, अथवा प्रलय को प्राप्त हो।
जावे चला चाहे जहाँ, पर परिग्रह मेरा नहीं।।२०९।।

ॐ ह्रीं समस्तपरिग्रहेण निर्ममत्वज्ञानिनः स्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४६।।

अब, 'ज्ञानी, किसी परिग्रह को नहीं चाहता है,' यह परिग्रहों के नामोल्लेख पूर्वक विशेषरूप से दो कलश एवं पाँच गाथाओं में कहते हैं –

(सोरठा)

सभी परिग्रह-त्याग, इसप्रकार सामान्य से।
विविध वस्तु परित्याग, अब आगे विस्तार से।।१४५।।

(हरिगीत)

है अनिच्छुक अपरिग्रही, ज्ञानी न चाहे धर्म को।
है परिग्रह ना धर्म का वह, धर्म का ज्ञायक रहे।।२१०।।

है अनिच्छुक अपरिग्रही, ज्ञानी न चाहे अधर्म को।
है परिग्रह ना अधर्म का, वह अधर्म का ज्ञायक रहे।।२११।।

है अनिच्छुक अपरिग्रही, ज्ञानी न चाहे असन को।
है परिग्रह ना असन का, वह असन का ज्ञायक रहे।।२१२।।

है अनिच्छुक अपरिग्रही, ज्ञानी न चाहे पेय को।
है परिग्रह ना पेय का, वह पेय का ज्ञायक रहे।।२१३।।

इत्यादि विध-विध भाव जो, ज्ञानी न चाहे सभी को।
सर्वत्र ही वह निरालम्बी, नियत ज्ञायकभाव है।।२१४।।

(दोहा)

होंय कर्म के उदय से, ज्ञानी के जो भोग।
परिग्रहत्व पावे नहीं, क्योंकि राग-वियोग।।१४६।।

ॐ ह्रीं समस्तपरिग्रह-अवाञ्छकज्ञानिनः स्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४७।।

अब, 'अज्ञानी तीनों काल के भोगों की वांछा क्यों नहीं करता?' इसका समाधान, तीन गाथाओं एवं एक कलश में करते हैं –

(हरिगीत)

उदयगत जो भोग हैं, उनमें वियोगी बुद्धि है।
अर अनागत भोग की, सद्ज्ञानि के कांक्षा नहीं।।२१५।।

वेद्य-वेदक भाव दोनों, नष्ट होते प्रतिसमय।
ज्ञानी रहे ज्ञायक सदा ना, उभय की कांक्षा करे।।२१६।।

बन्ध-भोग-निमित्त में, अर देह में संसार में।
सद्ज्ञानियों को राग होता, नहीं अध्यवसान में।।२१७।।

(हरिगीत)

हम जिन्हें चाहें अरे! उनका, भोग हो सकता नहीं।
क्योंकि पल-पल प्रलय पावें, वेद्य-वेदक भाव सब।।
बस! इसलिए सबके प्रति, अति ही विरक्त रहें सदा।
चाहें न कुछ भी जगत् में, निजतत्त्वविद् विद्वानजन।।१४७।।

ॐ ह्रीं वेद्य-वेदकभावाऽभावे निर्वाञ्छकज्ञानिनः स्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४८।।

अब, आगामी दो कलश और दो गाथाओं में दृष्टान्त सहित यह कहते हैं कि 'राग के अभाव के कारण ज्ञानी, कर्म करते हुए भी बँधते नहीं हैं' –

(हरिगीत)

जबतक कषायित न करें, सर्वांग फिटकरि आदि से।
तबतलक सूती वस्त्र पर, सर्वांग रंग चढ़ता नहीं।।
बस! उसतरह ही रागरस से, रिक्त सम्यग्ज्ञानिजन।
सब कर्म करते पर परीग्रह-भाव को ना प्राप्त हों।।१४८।।

रागरस से रहित ज्ञानी, जीव इस भूलोक में।
कर्मस्थ हों पर कर्मरज से, लिप्त होते हैं नहीं।।१४९।।

(हरिगीत)

पंकगत ज्यों कनक निर्मल, कर्मगत त्यों ज्ञानिजन।
राग-विरहित कर्मरज से, लिप्त होते हैं नहीं।।२१८।।

पंकगत ज्यों लोह त्यों ही, कर्मगत अज्ञानिजन।
रक्त हों परद्रव्य में अर, कर्मरज से लिप्त हों।।२१९।।

ॐ ह्रीं रागाऽभावे अबन्धकज्ञानिनः स्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४९।।

अब, 'भोग-भोगते हुए भी ज्ञानी क्यों नहीं बँधते?' यह एक कलश और चार गाथाओं में उदाहरण सहित कहते हैं –

(हरिगीत)

स्वयं ही हों परिणमित, स्वाधीन हैं सब वस्तुयें।
अर अन्य के द्वारा कभी, वे नहीं बदली जा सकें।।
जिम परजनित अपराध से, बँधते नहीं जन जगत् में।
तिम भोग भोगें किन्तु ज्ञानीजन कभी बँधते नहीं।।१५०।।

(हरिगीत)

ज्यों अचित्त और सचित्त, एवं मिश्र वस्तु भोगते।
भी शंख के शुक्लत्व को, ना कृष्ण कोई कर सके।।२२०।।

त्यों अचित्त और सचित्त एवं मिश्र वस्तु भोगते-।
भी ज्ञानि के ना ज्ञान को अज्ञान कोई कर सके।।२२१।।

जब स्वयं शुक्लत्व तज, वह कृष्ण होकर परिणमे।
तब स्वयं ही हो कृष्ण, एवं शुक्ल भाव परित्यजे।।२२२।।

इस ही तरह जब ज्ञानिजन, निजभाव को परित्याग कर।
अज्ञानमय हों परिणमित, तब स्वयं अज्ञानी बनें।।२२३।।

ॐ ह्रीं कर्मोदयनिमित्तक-भोगसद्भावेऽपि निर्जराभावप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१५०।।

अब, आचार्य कहते हैं कि 'भोगों से बन्ध नहीं होता, पर भोगने के भाव से तो होता है, अतः इन सबसे विरक्त होकर आत्मा में रत रहो' –

(हरिगीत)

कर्म करना ज्ञानियों को, उचित हो सकता नहीं।
फिर भी भोगासक्त जो, दुर्भुक्त ही वे जानिये।।

हो भोगने से बन्ध ना, पर भोगने के भाव से।
तो बन्ध है बस! इसलिए, निज आतमा में रत रहो।।१५१।।

ॐ ह्रीं भोगभावमुक्त-आत्मानुभवप्रेरक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं.. ।।१५१।।

'फल के अभिलाषी अज्ञानी बँधते हैं और फलाभिलाषा से रहित ज्ञानी बँधते नहीं हैं,' यह दो कलश और चार गाथाओं में दृष्टान्त सहित बताते हैं –

(हरिगीत)

तू भोग मुझको ना कहे, यह कर्म निज करतार को।
फलाभिलाषी जीव ही, नित कर्मफल को भोगता।।
फलाभिलाषाविरत मुनिजन, ज्ञानमय वर्तन करें।
सब कर्म करते हुए भी, वे कर्मबन्धन ना करें।।१५२।।

(हरिगीत)

आजीविका के हेतु नर, ज्यों नृपति की सेवा करे।
तो नरपती भी सब तरह, उसके लिए सुविधा करे।।२२४।।
इस ही तरह जब जीव, सुख के हेतु सेवे कर्मरज।
तो कर्मरज भी सब तरह, उसके लिए सुविधा करे।।२२५।।
आजीविका के हेतु जब नर, नृपति-सेवा ना करे।
तब नृपति भी उसके लिए, उस तरह सुविधा ना करे।।२२६।।
त्यों कर्मरज सेवे नहीं, जब जीव सुख के हेतु से।
तो कर्मरज उसके लिए, उस तरह सुविधा ना करे।।२२७।।

(हरिगीत)

जिसे फल की चाह ना, वह करे – यह जँचता नहीं।
यदि विवशता वश आ पड़े तो, बात ही कुछ और है।।
अकम्प ज्ञान-स्वभाव में, थिर रहें जो वे ज्ञानिजन।
सब कर्म करते या नहीं - यह कौन जाने विज्ञजन।।१५३।।

ॐ ह्रीं फलाभिलाषाऽभावे ज्ञानिनः अबन्धकस्वरूपप्ररूपक-समयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१५२।।

अब, आचार्य कुन्दकुन्ददेव, 'सम्यग्दर्शन के आठ अंगों का वर्णन' प्रारम्भ करते हैं। वहाँ सर्वप्रथम टीकाकार आचार्य अमृतचन्द्रदेव, 'निःशंकित अंग' सम्बन्धी कलश लिखते हुए उसकी प्रशंसा करते हैं –

(हरिगीत)

वज्र का हो पात जो, त्रैलोक्य को विह्वल करे।
फिर भी अरे! अति साहसी, सद्दृष्टिजन निश्चल रहें।।
निश्चल रहें निर्भय रहें, निशंक निज में ही रहें-।
निःसर्ग ही निज बोध-वपु, निज बोध से अच्युत रहें।।१५४।।

ॐ ह्रीं निःशंकसम्यग्दृष्टिस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं... ।।१५३।।

अब, 'सम्यग्दृष्टि निःशंक होने से वह सप्त भयों से रहित होता है,' यह एक गाथा और छह कलशों द्वारा कहते हैं –

(हरिगीत)

नि:शंक हों सद्दृष्टि बस! इसलिए ही निर्भय रहें।
वे सप्त भय से मुक्त हैं, इसलिए ही नि:शंक हैं।।२२८।।

ॐ ह्रीं निःशंकत्वात् सप्तभयरहित-सम्यग्दृष्टिस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१५४।।

अब आचार्य अमृतचन्द्रदेव, क्रमशः 'सप्त भयों से रहित सम्यग्दृष्टि का निरूपण' आगामी छह कलशों में करते हैं; सर्व प्रथम 'सम्यग्दृष्टि के इहलोक -परलोकभय का अभाव' प्रदर्शित करते हुए वे लिखते हैं –

(हरिगीत)

इहलोक अर परलोक से, मेरा न कुछ सम्बन्ध है।
अर भिन्न पर से एक यह, चिल्लोक ही मम लोक है।।
जब जानते यह ज्ञानिजन, तब होंय क्यों भयभीत वे ?।
वे तो सतत नि:शंक हो, निजज्ञान का अनुभव करें।। १५५।।

ॐ ह्रीं इहलोक-परलोकभयरहित सम्यग्दृष्टिस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१५५।।

अब, 'सम्यग्दृष्टि के वेदनाभय का अभाव' बताते हुए लिखते हैं –

(हरिगीत)

चूंकि एक-अभेद में ही, वेद्य-वेदक भाव हो।
अतएव ज्ञानी नित्य ही निजज्ञान का अनुभव करें।।
अन्य वेदना कोइ है नहीं, तब होंय क्यों भयभीत वे?।
वे तो सतत निःशंक हो, निजज्ञान का अनुभव करें।। १५६।।

ॐ ह्रीं वेदनाभयरहित सम्यग्दृष्टिस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१५६।।

अब, 'सम्यग्दृष्टि के अरक्षाभय का अभाव' प्रदर्शित करते हुए लिखते हैं –

(हरिगीत)

निज आतमा सत् और, सत् का नाश हो सकता नहीं।
है सदा रक्षित सत्, अरक्षाभाव हो सकता नहीं?।।
जब जानते यह ज्ञानिजन, तब होंय क्यों भयभीत वें?।
वे तो सतत निःशंक हो, निजज्ञान का अनुभव करें।। १५७।।

ॐ ह्रीं अरक्षाभयरहित सम्यग्दृष्टिस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१५७।।

अब, सम्यग्दृष्टि के अगुप्तिभय का अभाव प्रदर्शित करते हुए लिखते हैं–

(हरिगीत)

कोई किसी का कुछ करे, यह बात सम्भव है नहीं।
सब हैं सुरक्षित स्वयं में, अगुप्ति का भय है नहीं।।
जब जानते यह ज्ञानिजन, तब होंय क्यों भयभीत वे?।
वे तो सतत निःशंक हो निजज्ञान का अनुभव करें।। १५८।।

ॐ ह्रीं अगुप्तिभयरहितसम्यग्दृष्टिस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१५८।।

अब 'सम्यग्दृष्टि के मरणभय का अभाव' प्रदर्शित करते हुए लिखते हैं –

(हरिगीत)

मृत्यु कहे सारा जगत बस! प्राण के उच्छेद को।
ज्ञान ही है प्राण मम, उसका नहीं विच्छेद हो।।
तब मरणभय हो किसतरह, हों ज्ञानिजन भयभीत क्यों?।
वे तो सतत निःशंक हो, निज ज्ञान का अनुभव करें।।१५९।।

ॐ ह्रीं मरणभयरहित सम्यग्दृष्टिस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं..।।१५९।।

अब, 'सम्यग्दृष्टि के आकस्मिकभय का अभाव' प्रदर्शित करते हुए लिखते हैं –

(हरिगीत)

इसमें अचानक कुछ नहीं, यह ज्ञान निश्चल एक है।
यह है सदा ही एक-सा, एवं अनादि अनंत है।।
जब जानते यह ज्ञानिजन,तब होंय क्यों भयभीत वे?।
वे तो सतत निःशंक हो निज ज्ञान का अनुभव करें।।१६०।।

ॐ ह्रीं आकस्मिकभयरहित स्वरूपसम्यग्दृष्टिप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१६०।।

अब, आगामी कलश में कहते हैं कि 'सम्यग्दृष्टि को सतत निर्जरा' होती रहती है –

(दोहा)

नित निःशंक सद्दृष्टि को, कर्मबन्ध न होय।
पूर्वोदय को भोगते, सतत निर्जरा होय।।१६१।।

ॐ ह्रीं सम्यग्दृष्टिने सतत निर्जराप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं...।।१६१।।

अब, आचार्य कुन्दकुन्ददेव, आगामी आठ गाथाओं में 'सम्यग्दृष्टि के निःशंकितादि आठ अंगों का स्वरूप' क्रमशः बताते हैं; सर्वप्रथम 'निःशंक सम्यग्दृष्टि का स्वरूप' निम्न गाथा में लिखते हैं –

(हरिगीत)

जो कर्म-बन्धन मोह-कर्ता, चार पाये छेदते।
वे आतमा निःशंक सम्यग्दृष्टि हैं – यह जानना।।२२९।।

ॐ ह्रीं निःशंक-सम्यग्दृष्टिस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं.... ।।१६२।।

अब, 'निःकांक्ष सम्यग्दृष्टि का स्वरूप' निम्न गाथा में लिखते हैं –

(हरिगीत)

सब धर्म एवं कर्मफल की, ना करें आकांक्षा।
वे आतमा निःकांक्ष सम्यग्दृष्टि हैं – यह जानना॥२३०॥

ॐ ह्रीं निष्कांक्ष-सम्यग्दृष्टिस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं... ॥१६३॥

अब, 'निर्विचिकित्सक सम्यग्दृष्टि का स्वरूप' गाथा में लिखते हैं –

(हरिगीत)

जो नहीं करते जुगुप्सा, सब वस्तुधर्मों के प्रति।
वे आतमा ही निर्जुगुप्सक, समकिती हैं जानना॥२३१॥

ॐ ह्रीं निर्विचिकित्सक-सम्यग्दृष्टिस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥१६४॥

अब, 'अमूढ़दृष्टि सम्यग्दृष्टि का स्वरूप' निम्न गाथा में लिखते हैं –

(हरिगीत)

सर्व भावों के प्रति, सद्‌दृष्टि हैं असंमूढ़ हैं।
अमूढ़दृष्टि समकिती वे, आतमा ही जानना॥२३२॥

ॐ ह्रीं अमूढ़दृष्टि-सम्यग्दृष्टिस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं... ॥१६५॥

अब, 'उपगूहक सम्यग्दृष्टि का स्वरूप' निम्न गाथा में लिखते हैं –

(हरिगीत)

जो सिद्धभक्ति युक्त हैं, सब धर्म का गोपन करें।
वे आतमा गोपनकरी, सद्‌दृष्टि हैं यह जानना॥२३३॥

ॐ ह्रीं उपगूहक-सम्यग्दृष्टिस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥१६६॥

अब, 'स्थितिकारी सम्यग्दृष्टि का स्वरूप' निम्न गाथा में लिखते हैं –

उम्मग्गं गच्छंतं सगं पि मग्गे ठवेदि जो चेदा।
सो ठिदिकरणाजुत्तो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो॥२३४॥

(हरिगीत)

उन्मार्गगत निजभाव को, लावें स्वयं सन्मार्ग में।
वे आतमा थितिकरण, सम्यग्दृष्टि हैं यह जानना।।२३४।।

ॐ ह्रीं स्थितिकारी-सम्यग्दृष्टिस्वरूप-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। १६७।।

अब, 'वत्सल सम्यग्दृष्टि का स्वरूप' निम्न गाथा में लिखते हैं –

जो कुणदि वच्छलत्तं तिण्हं साहूण मोक्खमग्गम्हि।
सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो।।२३५।।

(हरिगीत)

मुक्तिमगगत साधुत्रय प्रति, रखें वत्सल भाव जो।
वे आतमा वत्सली, सम्यग्दृष्टि हैं यह जानना।।२३५।।

ॐ ह्रीं सन्मार्गवत्सल-सम्यग्दृष्टिस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१६८।।

अब, 'प्रभावक सम्यग्दृष्टि का स्वरूप' निम्न गाथा में लिखते हैं –

(हरिगीत)

सद्ज्ञानरथ आरूढ़ हो, जो भ्रमे मनरथ मार्ग में।
वे प्रभावक जिनमार्ग के, सद्दृष्टि उनको जानना।।२३६।।

ॐ ह्रीं प्रभावक-सम्यग्दृष्टिस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं...।।१६९।।

अब, अन्त में उपसंहार करते हुए आचार्य अमृतचन्द्रदेव एक कलश लिखते हैं –

(दोहा)

बन्ध न हो नव कर्म का, पूर्व कर्म का नाश।
नृत्य करें अष्टांग में, सम्यग्ज्ञान प्रकाश।।१६२।।

ॐ ह्रीं निर्जराकारक-श्रीसम्यग्ज्ञानाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१७०।।
(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

जयमाला

(दोहा)

है निर्जरा अधिकार की, महिमा अगम अनूप।
करने से आराधना, पावे अद्भुत रूप।।१।।

(मानव[1])

ज्ञानी विषयों को भोगें, पर बन्ध नहीं होता है।
निर्जरा सहज ही होती, आतम निर्मल होता है।।
सामर्थ्य ज्ञान की जानों, एवं विराग बल देखो।
इस अद्भुत अचरजकारी, घटना को जानो देखो।।२।।

खाते हुये जहर को, विष-वैद्य मरण न हो ज्यों।
भोगों को भोगे फिर भी, ज्ञानी को बन्ध न हो त्यों।।
ज्यों मदिरा पीवें मद्यप[2], मदिरा का असर न होवे।
त्यों ही विरागयुत ज्ञानी पर जग का असर न होवे।।३।।

है बात वस्तुतः ऐसी, ज्ञानी विषयों का सेवन।
अत्यन्त अरुचि से करते, अन्दर से करें न सेवन।।
सामर्थ्य ज्ञान की ऐसी, एवं विराग-बल ऐसा।
उनको अन्तर से उनसे, अति ही विरक्त रखता है।।४।।

ज्ञानी के होती ऐसी, रे! ज्ञान-वैराग्य-शक्ति।
उस शक्ति की महिमा है, छोड़ो न उनमें भक्ति।।
पर सम्यग्दृष्टि ज्ञानी, स्वच्छन्द नहीं हैं होते।
उनका चरित्र अति निर्मल, वे अति सज्जनतम होते।।५।।

१. तर्ज – ऐ मेरे वतन के लोगों! जरा आँख में भर लो पानी.....
२. शराब पीनेवाला

ज्यों कीचड़ में सोना हो, त्यों कर्मों में ज्ञानीजन।
सोना निर्मल ही रहता, ज्ञानीजन निर्मल रहते।।
ज्यों कीचड़ में लोहा हो, त्यों कीचड़ में अज्ञानी।
लोहे में जंग लग जाती, त्यों अज्ञ कर्म से लिपटे।।६।।

जो फल ना चाहे भाई, वह कुछ करता ही नहीं है।
यदि करना पड़े विवश हो, तो अन्य बात कुछ होगी।।
बाहर से करते दिखते, अन्दर विरक्त रहते हैं।
ज्ञानी ज्ञानी की जानें, हम नहीं जानते कुछ भी।।७।।

इन प्रश्नों के उत्तर, यदि आप जानना चाहें।
इनकी गहराई भाई, यदि आप नापना चाहें।।
निर्जराधिकार अनुशीलन, इकदम अच्छे से पढ़िये।
इसमें आगत चर्चा के, अन्तर में जरा उतरिये।।८।।

छोड़ उपेक्षा भाई! अन्तर्मन से आदरिये।
गहराई में जा-जाकर, अन्तर में जरा उतरिये।।
कीजिए मनन अर चिन्तन, एवं अनुशीलन करिये।
रे! अधिक कहें क्या भाई, तद्रूप परिणमन करिये।।९।।

(दोहा)

करो करम की निर्जरा, कर परिणमन विशुद्ध।
हो जावेगा आतमा, अहो एकदम शुद्ध।।१०।।

ॐ ह्रीं श्री निर्जरातत्त्वप्रतिपादक-निर्जराधिकाराय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

अब समाप्त ही हो रहा, यह अधिकार महान।
भव्य निर्जरा प्राप्त कर, शीघ्र बनो भगवान।। ११।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

७

बन्ध-मोक्ष अधिकार पूजन

स्थापना

(दोहा)

रागभाव तो बन्ध है, वीतरागता मोक्ष।
एवं आत्मस्वभाव में, नहीं बन्ध ना मोक्ष।। १।।

बन्धकथा से कभी न, होय बन्ध का नाश।
आत्मसाधना से सदा, हो शिवसुख अविनाश।। २।।

अष्ट द्रव्य से कर रहा, पूजन अगम अनूप।
बन्ध-मोक्ष अधिकार की, समयसार शिवभूप।। ३।।

ॐ ह्रीं बन्ध-मोक्षस्वरूपप्ररूपक-बन्ध-मोक्षाधिकारौ! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं बन्ध-मोक्षस्वरूपप्ररूपक-बन्ध-मोक्षाधिकारौ! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं बन्ध-मोक्षस्वरूपप्ररूपक-बन्ध-मोक्षाधिकारौ! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्। (इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(मानव)

जल

आतम-स्वभाव के जल से, रागादिक मल धो-धोकर।
अन्तर से बाहर निकलें, निर्मद निर्मल हो-होकर।।
रे! राग भाव में फँस कर, अब तक अनन्त दुख पाये।
रे! मोक्षमार्ग में चल कर, अब तो अनन्त सुख पायें।।

ॐ ह्रीं बन्ध-मोक्षस्वरूपप्ररूपक-बन्ध-मोक्षाधिकाराभ्यां जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

सन्तप्त जगत में आतम, भव-ताप में व्याकुल होवे।
शीतल स्वभाव में रमकर, चन्दन-सा शीतल होवे।।

रे! राग भाव में फँस कर, अब तक अनन्त दुख पाये।
रे! मोक्षमार्ग में चल कर, अब तो अनन्त सुख पायें।।

ॐ ह्रीं बन्ध-मोक्षस्वरूपप्ररूपक-बन्ध-मोक्षाधिकाराभ्यां संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत

क्षत में क्षत-विक्षत होकर, अक्षत न अभी तक पाया।
अक्षत अविनाशी आतम, की शरणा में अब आया।।
रे! राग भाव में फँस कर, अब तक अनन्त दुख पाये।
रे! मोक्षमार्ग में चल कर, अब तो अनन्त सुख पायें।।

ॐ ह्रीं बन्ध-मोक्षस्वरूपप्ररूपक-बन्ध-मोक्षाधिकाराभ्यां अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

भक्ति के पुष्प मनोहर, चरणों में लेकर आया।
दुर्भावों से बच-बचकर, तेरी शरणा में आया।।
रे! राग भाव में फँस कर, अब तक अनन्त दुख पाये।
रे! मोक्षमार्ग में चल कर, अब तो अनन्त सुख पायें।।

ॐ ह्रीं बन्ध-मोक्षस्वरूपप्ररूपक-बन्ध-मोक्षाधिकाराभ्यां कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नैवेद्य

कितने ही व्यंजन खाओ, पर जग में भूख मिटे ना।
जो शरण आपकी आवै, उसको तो भूख लगे ना।
रे! राग भाव में फँस कर, अब तक अनन्त दुख पाये।
रे! मोक्षमार्ग में चल कर, अब तो अनन्त सुख पायें।।

ॐ ह्रीं बन्ध-मोक्षस्वरूपप्ररूपक-बन्ध-मोक्षाधिकाराभ्यां क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप

जग का यह दीपक जग को, ना पूर्ण प्रकाशित करता।
पर ज्ञानदीप इस जग को, परिपूर्ण प्रकाशित करता।।

रे! राग भाव में फँस कर, अब तक अनन्त दुख पाये।
रे! मोक्षमार्ग में चल कर, अब तो अनन्त सुख पायें।।

ॐ ह्रीं बन्ध-मोक्षस्वरूपप्ररूपक-बन्ध-मोक्षाधिकाराभ्यां मोहान्धकार विनाशयनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप

यह धूप दशांगी जग में, कर्मों को नहीं जलाती।
पर गन्ध आत्मा की तो, रे उन्हें भस्म कर जाती।।
रे! राग भाव में फँस कर, अब तक अनन्त दुख पाये।
रे! मोक्षमार्ग में चल कर, अब तो अनन्त सुख पायें।।

ॐ ह्रीं बन्ध-मोक्षस्वरूपप्ररूपक-बन्ध-मोक्षाधिकाराभ्यां अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

मुक्ति का अनुपम फल तो, ये कभी नहीं दे सकते।
मुक्तिफल तो सबको ही, अपने आतम से मिलते।।
रे! राग भाव में फँस कर, अब तक अनन्त दुख पाये।
रे! मोक्षमार्ग में चल कर, अब तो अनन्त सुख पायें।।

ॐ ह्रीं श्रीसमयसारे बन्ध-मोक्षस्वरूपप्ररूपक-बन्ध-मोक्षाधिकाराभ्यां मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

यह अर्घ्य आतमा को तो, सुख-शान्ति नहीं दे सकता।
सुख-शान्ति मिले अपने में, कोइ और नहीं दे सकता।।
रे! राग भाव में फँस कर, अब तक अनन्त दुख पाये।
रे! मोक्षमार्ग में चल कर, अब तो अनन्त सुख पायें।।

ॐ ह्रीं बन्ध-मोक्षस्वरूपप्ररूपक-बन्ध-मोक्षाधिकाराभ्यां अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अर्घ्यावली

।। बन्ध अधिकार ।।

(दोहा)

करम–योग–हिंसा–विषय, न कर्मबन्ध के हेतु।
मोह, राग अर द्वेष हैं, कर्मबन्ध के हेतु।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

इस अधिकार के प्रारम्भ में टीकाकार आचार्य अमृतचन्द्रदेव, 'रंगमंच पर बन्ध का प्रवेश कराते हैं और उसी बन्ध का नाश करनेवाले सम्यग्ज्ञान की महिमा' करते हैं –

(हरिगीत)

मदमत्त हो मदमोह में, इस बन्ध ने नर्तन किया।
रसराग के उद्गार से सब, जगत् को पागल किया।।
उदार अर आनन्दभोजी, धीर निरुपधि ज्ञान ने।
अति ही अनाकुलभाव से, उस बन्ध का मर्दन किया।।१६३।।

ॐ ह्रीं बन्धनाशक-श्रीसम्यग्ज्ञानाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१७१।।

यहाँ सर्वप्रथम, 'अज्ञानी जीव, रागादि से लिप्त होने के कारण ही बन्ध को प्राप्त होता है,' यह बात पाँच गाथाओं एवं एक कलश के द्वारा सोदाहरण समझाते हैं –

(हरिगीत)

ज्यों तेल-मर्दन कर पुरुष, रेणु-बहुल स्थान में।
व्यायाम करता शस्त्र से, बहुविध बहुत उत्साह से।।२३७।।
तरु ताड़ कदली बाँस आदिक, वनस्पति छेदन करे।
सचित्त और अचित्त द्रव्यों, का बहुत भेदन करे।।२३८।।
बहुविध बहुत उपकरण से, उपघात करते पुरुष को।
परमार्थ से चिन्तन करो, रजबन्ध किस कारण हुआ।।२३९।।
चिकनाई ही रजबन्ध का, कारण कहा जिनराज ने।
पर काय-चेष्टादिक नहीं, यह जान लो परमार्थ से।।२४०।।

बहुभाँति चेष्टारत तथा, रागादि को करते हुए।
सब कर्मरज से लिप्त होते, हैं जगत् में अज्ञजन।।२४१।।

(हरिगीत)

कर्म की ये वर्गणाएँ, बन्ध का कारण नहीं।
अत्यन्त चंचल योग भी है, बन्ध के कारण नहीं।।
करण कारण हैं नहीं, चिद्-अचिद् हिंसा भी नहीं।
बस! बन्ध के कारण कहे, अज्ञानमय रागादि ही।।१६४।।

ॐ ह्रीं अज्ञानमय-रागादिभ्यः बन्धप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१७२।।

अब, आगामी पाँच गाथाओं एवं एक कलश में सोदाहरण यह स्पष्ट करते हैं कि 'मिथ्यात्व सहित रागादि भावों के अभाव के कारण सम्यग्दृष्टियों को बन्ध नहीं होता' –

(हरिगीत)

ज्यों तेल मर्दन रहित जन, रेणू-बहुल स्थान में।
व्यायाम करता शस्त्र से, बहुविध बहुत उत्साह से।।२४२।।
तरु ताल कदली बाँस आदिक, वनस्पति छेदन करे।
सचित्त और अचित्त द्रव्यों, का बहुत भेदन करे।।२४३।।
बहुविध बहुत उपकरण से, उपघात करते पुरुष को।
परमार्थ से चिन्तन करो, रजबन्ध क्यों कर ना हुआ?।।२४४।।
चिकनाई ही रजबन्ध का, कारण कहा जिनराज ने।
पर काय-चेष्टादिक नहीं, यह जान लो परमार्थ से।।२४५।।
बहुभाँति चेष्टारत तथा, रागादि ना करते हुए।
बस! कर्मरज से लिप्त होते नहीं, जग में विज्ञजन।।२४६।।

(हरिगीत)

भले ही सब कर्मपुद्गल, से भरा यह लोक हो।
भले ही मन-वचन-तन, परिस्पन्दमय यह योग हो।।

चिद्-अचिद् का घात एवं, करण का उपभोग हो।
फिर भी नहीं रागादि-विरहित, ज्ञानियों को बन्ध हो।।१६५।।

ॐ ह्रीं अज्ञानमयरागादिभ्यः विरहित-ज्ञानिनः बन्धाऽभावप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१७३।।

अब, आगामी कलश में सावधान करते हुए कहते हैं कि 'यद्यपि कार्मण-वर्गणा, मन-वचन-कायरूप योग, चेतन-अचेतन की हिंसा और पंचेन्द्रियों के भोग; इनमें से किसी से भी बन्ध नहीं होता; तथापि ज्ञानियों को निरर्गल प्रवृत्ति उचित नहीं है' –

(हरिगीत)

तो भी निरर्गल प्रवर्तन तो, ज्ञानियों को वर्ज्य है।
क्योंकि निरर्गल प्रवर्तन, तो बन्ध का स्थान है।।
वांछारहित जो प्रवर्तन वह, बन्ध विरहित जानिये।
जानना – करना परस्पर–विरोधी ही मानिये।।१६६।।

ॐ ह्रीं ज्ञानिनः निरर्गलप्रवृत्तिनिषेधक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं... ।।१७४।।

अब, आगामी कलश में 'कर्तृत्व सम्बन्धी अज्ञानमय अध्यवसान ही बन्ध का कारण है', यह कहते हैं –

(हरिगीत)

जो ज्ञानीजन हैं जानते वे, कभी भी करते नहीं।
करना तो बस! राग ही, जो करें वे जाने नहीं।।
अज्ञानमय यह राग तो है, भाव अध्यवसान ही।
बन्ध–कारण कहें ये, अज्ञानियों के भाव ही।।१६७।।

ॐ ह्रीं कर्तृत्वसम्बन्धी-अज्ञानमय-अध्यवसान एव बन्धकारणप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१७५।।

अब, आगामी छह गाथाओं में तर्कसहित यह कहते हैं कि 'अज्ञानियों के अपने जीवन-मरण और परजीवों के जीवन-मरण सम्बन्धी कर्तृत्व के अध्यवसान अज्ञानमय ही हैं' –

(हरिगीत)

मैं मारता हूँ अन्य को या मुझे मारें अन्यजन।
यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहें हे भव्यजन।।२४७।।

निज आयुक्षय से मरण हो यह बात जिनवर ने कही।
तुम मार कैसे सकोगे जब आयु हर सकते नहीं।।२४८।।

निज आयुक्षय से मरण हो यह बात जिनवर ने कही।
वे मरण कैसे करें तब जब आयु हर सकते नहीं।।२४९।।

मैं हूँ बचाता अन्य को मुझको बचावे अन्यजन।
यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहें हे भव्यजन।।२५०।।

सब आयु से जीवित रहें – यह बात जिनवर ने कही।
जीवित रखोगे किसतरह जब आयु दे सकते नहीं।।२५१।।

सब आयु से जीवित रहें यह बात जिनवर ने कही।
कैसे बचावें वे तुझे जब आयु दे सकते नहीं।।२५२।।

ॐ ह्रीं स्व-परयोः जीवन-मरणसम्बन्धी-कर्तृत्वाऽध्यवसानप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१७६।।

इसी प्रकार 'अपने व परजीवों के सुख-दुःख सम्बन्धी कर्तृत्व का अध्यवसान भी अज्ञानमय ही है,' यह चार गाथाओं में सतर्क कहते हैं –

(हरिगीत)

मैं सुखी करता दुःखी करता हूँ जगत् में अन्य को।
यह मान्यता अज्ञान है क्यों ज्ञानियों को मान्य हो?।।२५३।।

हैं सुखी होते दुःखी होते कर्म से सब जीव जब।
तू कर्म दे सकता न जब सुख–दुःख दे किस भाँति तब।।२५४।।

हैं सुखी होते दुःखी होते कर्म से सब जीव जब।
दुष्कर्म दे सकते न जब दुःख–दर्द दें किस भाँति तब।।२५५।।

हैं सुखी होते दुःखी होते कर्म से सब जीव जब।
सत्कर्म दे सकते न जब सुख–शांति दें किस भाँति तब।।२५६।।

ॐ ह्रीं स्व-परयोःसुख-दुःखसम्बन्धी-कर्तृत्वाध्यवसानप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१७७।।

अब, आगामी दो कलशों में उक्त सभी कार्यों का मूल कारण अपने अपने कर्म को बताते हैं, अन्य को कारण मानना मिथ्या बताते हैं –

(हरिगीत)

जीवन-मरण अर दुःख-सुख सब, प्राणियों के सदा ही।
अपने कर्म के उदय के, अनुसार ही हों नियम से।।
करे कोई किसी के जीवन-मरण अर दुक्ख-सुख।
विविध भूलों से भरी यह, मान्यता अज्ञान है।।१६८।।

(हरिगीत)

करे कोई किसी के जीवन-मरण अर दुक्ख-सुख।
मानते हैं जो पुरुष, अज्ञानमय इस बात को।।
कर्तृत्व रस से लबालब हैं, अहंकारी वे पुरुष।
भव-भव भ्रमें मिथ्यामती, अर आत्मघाती वे पुरुष।।१६९।।

ॐ ह्रीं कर्मोदयानुसारी-जीवन-मरण-सुख-दुखानां कर्तृत्वाऽध्यवसायान् अज्ञानप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१७८।।

अब, 'यह कर्तृत्व-सम्बन्धी अध्यवसाय, मिथ्या है' - इस बात को दो गाथाओं में कहते हैं -

(हरिगीत)

जो मरे या जो दुःखी हों, वे सब करम के उदय से।
'मैं दुःखी करता-मारता' यह बात क्यों मिथ्या न हो?।।२५७।।

जो ना मरे या ना दुःखी हो, सब करम के उदय से।
'ना दुःखी करता-मारता' यह बात क्यों मिथ्या न हो।।२५८।।

ॐ ह्रीं अध्यवसायादि-भावान् मिथ्यात्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१७९।।

अब, एक कलश और तीन गाथाओं के द्वारा यह कहते हैं कि 'मिथ्या अध्यवसाय ही बन्ध का कारण है, कोई बाह्य क्रिया नहीं' -

(दोहा)

विविध कर्म बन्धन करें, जो मिथ्याध्यवसाय।
मिथ्यामति निशदिन करें, वे मिथ्याध्यवसाय।।१७०।।

(हरिगीत)

मैं सुखी करता दुःखी करता, हूँ जगत् में अन्य को।
यह मान्यता ही मूढ़मति, शुभ-अशुभ का बन्धन करे।।२५९।।

'मैं सुखी करता दु:खी करता' यही अध्यवसान सब।
पुण्य एवं पाप के, बन्धक कहे हैं सूत्र में।।२६०।।
'मैं मारता मैं बचाता हूँ', यही अध्यवसान सब।
पाप एवं पुण्य के, बन्धक कहे हैं सूत्र में।।२६१।।

ॐ ह्रीं मिथ्याध्यवसायबन्धकारणप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८०।।

आगामी तीन गाथाओं में यह कहते हैं कि 'शुभाशुभक्रिया बन्ध का कारण नहीं, मिथ्याध्यवसाय ही बन्ध का कारण है; यही बन्ध का संक्षेप है' –

(हरिगीत)

मारो न मारो जीव को, हो बन्ध अध्यवसान से।
यह बन्ध का संक्षेप है, तुम जान लो परमार्थ से।।२६२।।
इस ही तरह चोरी, असत्य, कुशील एवं ग्रन्थ में।
जो हुए अध्यवसान हों, वे पाप का बन्धन करें।।२६३।।
इस ही तरह अचौर्य, सत्य, सुशील और अग्रन्थ में।
जो हुए अध्यवसान हों, वे पुण्य का बन्धन करें।।२६४।।

ॐ ह्रीं परवस्तुनः बन्धकारणत्व-निषेधप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८१।।

अब, एक गाथा में 'अध्यवसानभाव के अतिरिक्त कोई भी बाह्य वस्तु बन्ध का कारण नहीं है' यह कहते हैं –

(हरिगीत)

ये भाव अध्यवसान होते, वस्तु के अवलम्ब से।
पर वस्तु से ना बन्ध हो, हो बन्ध अध्यवसान से।।२६५।।

ॐ ह्रीं परवस्तुनः अध्यवसाननिमित्तत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८२।।

अब दो गाथाओं में अध्यवसानभावों का निरर्थकपना प्रदर्शित करते हैं –

(हरिगीत)

मैं सुखी करता दु:खी करता, बाँधता या छोड़ता।
यह मान्यता हे मूढ़मति! मिथ्या निरर्थक जानना।।२६६।।

जिय बँधे अध्यवसान से, शिवपथ-गमन से छूटते।
गहराई से सोचो जरा! पर में तुम्हारा क्या चले?।।२६७।।

ॐ ह्रीं अध्यवसानादिभावान् मिथ्याप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८३।।

अब, 'निरर्थक अध्यवसानादि भावों से यह जीव, पर को निजरूप और निज को पररूप करता है अर्थात् ऐसा मानता है,' यह एक कलश और दो गाथाओं में कहते हैं –

(दोहा)

निष्फल अध्यवसान में, मोहित हो यह जीव।
सर्वरूप निज को करे, जाने सब निजरूप।।१७१।।

(हरिगीत)

यह जीव अध्यवसान से, तिर्यंच नारक देव नर।
अर पुण्य एवं पाप सब, पर्यायमय निज को करे।।२६८।।

वह जीव और अजीव, एवं धर्म और अधर्ममय।
अर लोक और अलोक इन सबमय स्वयं निज को करे।।२६९।।

ॐ ह्रीं अध्यवसानादिभावानां निरर्थकत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८४।।

अब, आगामी कलश और एक गाथा में 'अध्यवसानादि भाव रहित मुनिराजों की प्रशंसा करते हुए वे कर्म से लिप्त नहीं होते हैं,' यह कहते हैं –

(रोला)

यद्यपि चेतन पूर्ण विश्व से भिन्न सदा है,
फिर भी निज को करे विश्वमय जिसके कारण।
मोहमूल वह अधवसाय ही जिसके न हो,
परम प्रतापी दृष्टिवन्त वे ही मुनिवर हैं।।१७२।।

(हरिगीत)

ये और इनसे अन्य, अध्यवसान जिनके हैं नहीं।
वे मुनीजन शुभ-अशुभ कर्मों, से न कबहूँ लिप्त हों।।२७०।।

ॐ ह्रीं अध्यवसानादिभावरहितमुनीनां स्वरूपनिरूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८५।।

अब अध्यवसान के पर्यायवाची बताकर उसका स्वरूप स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

व्यवसाय बुद्धी मती, अध्यवसान अर विज्ञान भी।
एकार्थवाचक हैं सभी, ये भाव चित् परिणाम भी।।२७१।।

ॐ ह्रीं अध्यवसानपर्यायवाचिनः स्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८६।।

इस प्रकार 'अध्यवसान त्याज्य हैं अर्थात् पराश्रित सम्पूर्ण व्यवहार ही त्याज्य है,' यह एक कलश व एक गाथा द्वारा कहते हैं –

(अडिल्ल)

सब ही अध्यवसान त्यागने योग्य हैं,
यह जो बात विशेष जिनेश्वर ने कही।
इस का तो स्पष्ट अर्थ यह जानिये,
अन्याश्रित व्यवहार त्यागने योग्य है।।
परमशुद्धनिश्चयनय का जो ज्ञेय है,
शुद्ध निजातमराम एक ही ध्येय है।
यदि ऐसी है बात तो मुनिजन क्यों नहीं?
शुद्धज्ञानघन आतम में निश्चल रहें।।१७३।।

(हरिगीत)

इसतरह ही परमार्थ से कर, नास्ति इस व्यवहार की।
निश्चयनयाश्रित श्रमणजन, प्राप्ति करें निर्वाण की।।२७२।।

ॐ ह्रीं पराश्रितव्यवहारनिषेधक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८७।।

व्यवहारनय का निषेध समझाने के लिए 'अभव्य को भी व्यवहारनय का आश्रय किसप्रकार होता है और वह कैसे कार्यकारी नहीं है?' यह तीन गाथाओं में कहते हैं –

(हरिगीत)

व्रत-समिति-गुप्ती-शील-तप, आदिकसभी जिनवरकथित।
करते हुए भी अभव्यजन, अज्ञानी मिथ्यादृष्टि हैं।।२७३।।

मोक्ष के श्रद्धान बिन सब, शास्त्र पढ़कर भी अभवि।
को पाठ गुण करता नहीं है, ज्ञान के श्रद्धान बिन।।२७४।।

अभव्यजन श्रद्धा करें, रुचि धरें अर रच-पच रहें।
जो धर्म भोग निमित्त हैं न कर्मक्षय में निमित्त जो।।२७५।।

ॐ ह्रीं अभव्याश्रितव्यवहारस्य निर्थकत्वप्रतिपादक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८८।।

अब, 'व्यवहार-निश्चय में निषेध्य-निषेधक सम्बन्ध बताने के लिए दोनों का स्वरूप' कहते हैं –

(हरिगीत)

जीवादि का श्रद्धान दर्शन, शास्त्र-अध्ययन ज्ञान है।
चारित्र है षट्काय रक्षा – यह कथन व्यवहार है।।२७६।।

निज आतमा ही ज्ञान है, दर्शन चरित भी आतमा।
अर योग संवर और प्रत्याख्यान भी है आतमा।।२७७।।

ॐ ह्रीं व्यवहार-निश्चययोः निषेध्य-निषेधकस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१८९।।

अब, 'कर्मबन्ध के कारण रागादि भावों का निमित्त कौन है?' - ऐसा प्रश्न एक कलश के माध्यम से प्रस्तुत करके उसका समाधान दो गाथाओं एवं एक कलश में करते हैं –

(सोरठा)

कहे जिनागम माँहि, शुद्धातम से भिन्न जो।
रागादिक परिणाम, कर्मबन्ध के हेतु वे।।
यहाँ प्रश्न अब एक, उन रागादिक भाव का।
यह आतम या अन्य, कौन हेतु है अब कहैं।।१७४।।

(हरिगीत)

ज्यों लालिमामय स्वयं परिणत, नहीं होता फटिकमणि।
पर लालिमायुत द्रव्य के, संयोग से हो लाल वह।।२७८।।

त्यों ज्ञानिजन रागादिमय, परिणत न होते स्वयं ही।
रागादि के ही उदय से, वे किये जाते रागमय।।२७९।।

(सोरठा)

अग्निरूप न होय, सूर्यकान्तमणि सूर्य बिन।
रागरूप न होय, यह आतम परसंग बिन।।१७५।।

ॐ ह्रीं रागादिसद्भावे परद्रव्यनिमित्तत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९०।।

अब, एक कलश व एक गाथा में यह कहते हैं कि 'वस्तु-स्वरूप के ज्ञाता ज्ञानी, राग के अकर्ता हैं –

(दोहा)

ऐसे वस्तुस्वभाव को, जाने विज्ञ सदीव।
अपनापन ना राग में, अत: अकारक जीव।।१७६।।

(हरिगीत)

ना स्वयं करता मोह एवं, राग–द्वेष–कषाय को।
इसलिए ज्ञानी जीव कर्ता, नहीं है रागादि का।।२८०।।

ॐ ह्रीं ज्ञानिनः रागादीनामकारकत्वस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९१।।

अब, यहाँ एक कलश व दो गाथाओं में यह कहते हैं कि 'अज्ञानी, वस्तु-स्वरूप को नहीं जानते हैं, अतः वे राग के कर्ता बनते हैं' –

(दोहा)

ऐसे वस्तुस्वभाव को, ना जाने अल्पज्ञ।
धरे एकता राग में, नहीं अकारक अज्ञ।।१७७।।

(हरिगीत)

राग-द्वेष-कषाय कर्मों, के उदय में भाव जो।
उनरूप परिणत जीव फिर, रागादि का बन्धन करे।।२८१।।
राग-द्वेष-कषाय कर्मों के उदय में भाव जो।
उनरूप परिणत आतमा रागादि का बन्धन करे।।२८२।।

ॐ ह्रीं श्री अज्ञानिनः रागादिकारकत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९२।।

अब, 'भगवान आत्मा, रागादि भावों का अकारक किस प्रकार है?' यह तीन गाथाओं में कहते हैं –

(हरिगीत)

है द्विविध अप्रतिक्रमण एवं, द्विविध है अत्याग भी।
इसलिए जिनदेव ने, अकारक कहा है आतमा।।२८३।।
अत्याग अप्रतिक्रमण दोनों, द्विविध हैं द्रव-भाव से।
इसलिए जिनदेव ने, अकारक कहा है आतमा।।२८४।।
द्रव्य–भाव से अत्याग–अप्रतिक्रमण होवें जब तलक।
तब तलक यह आतमा, कर्ता रहे – यह जानना।।२८५।।

ॐ ह्रीं श्री आत्मनः रागादिनामकारकत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९३।।

अब, आगामी दो गाथाओं में 'द्रव्य और भावरूप दोषों की निमित्त-नैमित्तिकता' को सोदाहरण समझाते हैं –

(हरिगीत)

अध:कर्मक आदि जो, पुद्गल दरब के दोष हैं।
परद्रव्य के गुणरूप उनको, ज्ञानिजन कैसे करें?।।२८६।।
उद्देशिक अध:कर्म जो, पुद्गल दरबमय अचेतन।
कहे जाते वे सदा, मेरे किये किस भाँति हों?।।२८७।।

ॐ ह्रीं श्री द्रव्य-भावदोषयोः निमित्त-नैमित्तिकत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९४।।

अब, 'वस्तु-स्वरूप और बन्ध की प्रक्रिया जाननेवाले ज्ञानी, बन्ध को उखाड़ कर, आत्मा को प्राप्त करते हैं', यह कलश द्वारा कहते हैं –

(सवैया इकतीसा)

परद्रव्य हैं निमित्त परभाव नैमित्तिक,
नैमित्तिक भावों से कषायवान् हो रहा।

भावीकर्मबन्धन हो इन कषायभावों से,
बन्धन में आतमा विलायमान हो रहा।।
इसप्रकार जान परभावों की सन्तति को,
जड़ से उखाड़ स्फुरायमान हो रहा।
आनन्दकन्द निज-आतम के वेदन में,
निज भगवान शोभायमान हो रहा।।१७८।।

ॐ ह्रीं बन्धप्रहारकसम्यग्ज्ञानिनः प्रशंसक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९५।।

अब, आगामी कलश में 'बन्ध को जड-मूल से उखाडनेवाली दिव्य ज्ञान-ज्योति की प्रशंसा' वीररस के माध्यम से करते हैं –

(सवैया इकतीसा)

बन्ध के जो मूल उन रागादिक भावों को,
जड़ से उखाड़ने उदीयमान हो रही।
जिसके उदय से चिन्मय-लोक की,
यह कर्म-कालिमा विलीयमान हो रही।।
जिसके उदय को कोई नहीं रोक सके,
अद्भुत शौर्य से विकासमान हो रही।
कमर कसे हुए धीर-वीर-गम्भीर,
ऐसी दिव्यज्योति प्रकाशमान हो रही।।१७९।।

ॐ ह्रीं बन्धनाशक-श्रीसम्यग्ज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१९६।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

।। मोक्ष अधिकार ।।

(दोहा)

बन्धकथा से कभी ना, होय बन्ध का नाश।
आत्म-साधना से सदा, हो शिव-सुख अविनाश।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अब, मोक्ष अधिकार के प्रारम्भ में आचार्य अमृतचन्द्रदेव, 'मोक्ष को रंगभूमि में प्रवेश कराते हुए प्रज्ञाछैनी से आतमा और बन्ध को भिन्न-भिन्न करनेवाली ज्ञान-ज्योति का स्मरण' करते हैं –

(हरिगीत)

निज आतमा अर बन्ध को, कर पृथक् प्रज्ञाछैनी से।
सद्ज्ञानमय निज आत्म को, कर सरस परमानन्द से।।
उत्कृष्ट है कृतकृत्य है, परिपूर्णता को प्राप्त है।
प्रगटित हुई वह ज्ञानज्योति, जो स्वयं में व्याप्त है।।१८०।।

ॐ ह्रीं आत्म-बन्धविभेदक-श्रीसम्यग्ज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं... ।।१९७।।

सर्वप्रथम आचार्य कुन्दकुन्ददेव, 'बन्ध-स्वरूप के ज्ञानमात्र से जीव मुक्त नहीं हो सकता,' इस बात को तीन गाथाओं में कहते हैं –

(हरिगीत)

कोई पुरुष चिरकाल से, आबद्ध होकर बन्ध के।
तीव्र–मन्दस्वभाव एवं, काल को ही जानता।।२८८।।
किन्तु यदि वह बन्ध का, छेदन न कर छूटे नहीं।
तो वह पुरुष चिरकाल तक, निज मुक्ति को पाता नहीं।।२८९।।
इस ही तरह प्रकृति प्रदेश, स्थिति अर अनुभाग को।
जानकर भी नहीं छूटे, शुद्ध हो तब छूटता।।२९०।।

ॐ ह्रीं बन्धस्वरूपज्ञानमात्रेण मोक्षकारणत्वनिषेधक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९८।।

अब, आगामी तीन गाथाओं में यह कहते हैं कि 'बन्ध के चिन्तन से आत्मा मुक्त नहीं होता, बल्कि बन्ध और आत्मा में द्विधाकरण अर्थात् भेदज्ञान से मुक्त होता है' –

(हरिगीत)

बन्ध के चिन्तवन से ज्यों, बँधे जन ना मुक्त हों।
त्यों चिन्तवन से बन्ध के, सब बँधे जीव न मुक्त हों।।२९१।।

छेदकर सब बन्धनों को, बद्धजन ज्यों मुक्त हों।
त्यों छेदकर सब बन्धनों को, बद्ध जिय सब मुक्त हों।।२९२।।
जो जानकर निजभाव निज में, और बन्ध-स्वभाव को।
विरक्त हों जो बन्ध से, वे जीव कर्म-विमुक्त हों।।२९३।।

ॐ ह्रीं आत्म-बन्धयोः द्विधाकरणमेव मोक्षकारणप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१९९।।

अब, 'आत्मा और बन्ध का द्विधाकरण किस साधन से होता है?'– यह बताते हैं –

(हरिगीत)

जीव एवं बन्ध निज-निज, लक्षणों से भिन्न हों।
दोनों पृथक् हो जायें, प्रज्ञाछैनी से जब छिन्न हों।।२९४।।

ॐ ह्रीं प्रज्ञैव बन्धात्म-द्विधाकरणसाधनप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२००।।

अब, एक कलश द्वारा 'आत्मा और बन्ध में भेदविज्ञान करनेवाले ज्ञानीजन, किस प्रकार भेदज्ञान का पुरुषार्थ करते हैं?' यह बताते हैं –

(हरिगीत)

सूक्ष्म अन्तःसन्धि में, अति तीक्ष्ण प्रज्ञाछैनी को।
अतिनिपुणता से डालकर, अतिनिपुणजन ने बन्ध को।।
अति भिन्न करके आतमा से, आतमा में जम गये।
वे ही विवेकी धन्य हैं, जो भव-जलधि से तिर गये।।१८१।।

ॐ ह्रीं आत्म-बन्धद्विधाकारक-सम्यग्ज्ञानिनः महिमाप्रतिपादक-श्रीज्ञान-ज्योतिषे नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२०१।।

आगामी दो गाथाओं में यह बताते हैं कि 'आत्मा और बन्ध में द्विधाकरण करने के पश्चात् उन बन्ध और आत्मा का क्या करना चाहिए' –

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं।
बंधो छेददव्वो सुद्धा अप्पा य घेत्तव्वो।।२९५।।

कह सो घिप्पदि अप्पा पण्णाए सो दु घिप्पदे अप्पा।
जह पण्णाइ विभत्तो तह पण्णाएव घेत्तव्वो।।२९६।।

(हरिगीत)

जीव एवं बन्ध निज-निज, लक्षणों से भिन्न हों।
बन्ध को है छेदना अर, ग्रहण करना आतमा।।२९५।।

जिस भाँति प्रज्ञाछैनी से, पर से विभक्त किया इसे।
उस भाँति प्रज्ञाछैनी से ही, अरे! ग्रहण करो इसे।।२९६।।

ॐ ह्रीं प्रज्ञयैव बन्धत्यागाऽऽत्मग्रहणप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२०२।।

अब, 'सामान्य चेतनास्वरूप एवं उनके भेदरूप दर्शन-ज्ञानचेतनास्वरूप आत्मा के ग्रहण करने का उपदेश', तीन गाथाओं एवं एक कलश में देते हैं-

(हरिगीत)

इस भाँति प्रज्ञा ग्रहे कि, मैं हूँ वही जो चेतता।
अवशेष जो हैं भाव वे, मेरे नहीं यह जानना।।२९७।।
इस भाँति प्रज्ञा ग्रहे कि मैं हूँ वही जो देखता।
अवशेष जो हैं भाव वे मेरे नहीं यह जानना।।२९८।।
इस भाँति प्रज्ञा ग्रहे कि मैं हूँ वही जो जानता।
अवशेष जो हैं भाव वे मेरे नहीं यह जानना।।२९९।।

(हरिगीत)

स्वलक्षणों के प्रबल बल से, भेदकर परभाव को।
चिद्लक्षणों से ग्रहण कर, चैतन्यमय निजभाव को।।
यदि भेद को भी प्राप्त हो, गुण धर्म कारक आदि से।
तो भले हो पर मैं तो केवल, शुद्ध चिन्मय मात्र हूँ।।१८२।।

ॐ ह्रीं प्रज्ञयैव चेतक-दृष्टा-ज्ञातास्वरूपाऽऽत्मग्राहक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२०३।।

अब, 'चेतना के द्वैत-अद्वैत से ही आत्मस्वरूप की सिद्धि होती है' – यह बताते हुए चेतना के ग्रहण की प्रेरणा, एक कलश द्वारा देते हैं –

(हरिगीत)

है यद्यपि अद्वैत ही यह, चेतना इस जगत् में।
किन्तु फिर भी ज्ञान-दर्शन, भेद से दो रूप है।।
यह चेतना-दर्शन सदा, सामान्य अवलोकन करे।
पर ज्ञान जाने सब विशेषों, को तदपि निज में रहे।।
अस्तित्व ही ना रहे इनके, बिना चेतन द्रव्य का।
चेतना के बिना चेतन द्रव्य का अस्तित्व क्या?।।
चेतन नहीं बिन चेतना, चेतन बिना ना चेतना।
बस! इसलिए हे आत्मन्! इनमें सदा ही चेत ना।।१८३।।

ॐ ह्रीं द्वैताद्वैतस्वरूपचेतनायाः ग्रहणग्राहणप्रेरक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२०४।।

अब, 'स्व-पर का भेद जाननेवाला ज्ञानी, पर को नहीं अपनाता है,' – यह एक कलश और एक गाथा द्वारा कहते हैं –

(दोहा)

चिन्मय चेतनभाव है, पर हैं पर के भाव।
उपादेय चिद्भाव है, हेय सभी परभाव।।१८४।।

(हरिगीत)

निज आतमा को शुद्ध अर पररूप पर को जानता।
है कौन बुध जो जगत में परद्रव्य को अपना कहे।।३००।।

ॐ ह्रीं परभावममत्वनिवारकभेदज्ञानिनः स्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २०५।।

अब, 'मुमुक्षुओं को मोक्ष-प्रदायक किस सिद्धान्त का सेवन करना चाहिए,' यह कलश द्वारा कहते हैं –

(हरिगीत)

मैं तो सदा ही शुद्ध परमानन्द चिन्मयज्योति हूँ।
सेवन करें सिद्धान्त यह सब ही मुमुक्षु बन्धुजन।।
जो विविध परभाव मुझमें दिखें वे मुझ से पृथक्।
वे मैं नहीं हूँ क्योंकि वे मेरे लिए परद्रव्य हैं।।१८५।।

ॐ ह्रीं मोक्षप्रदायकसिद्धान्तप्ररूपक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं.... ।।२०६।।

अब, 'पर को ग्रहण करनेवाले अपराधी हैं, वे कर्म से बँधते हैं तथा स्वद्रव्य में रत निरपराधी हैं, वे कर्म से नहीं बँधते हैं,' – यह एक कलश और तीन गाथाओं में सोदाहरण कहते हैं –

(दोहा)

परग्राही अपराधिजन, बाँधे कर्म सदीव।
स्व में ही संवृत्त जो, वे ना बँधे कदीव।।१८६।।

(हरिगीत)

अपराध चौर्यादिक करें, जो पुरुष वे शंकित रहें।
कि चोर है यह जानकर, कोई मुझे ना बाँध ले।।३०१।।

अपराध जो करता नहीं, निःशंक जनपद में रहे।
बँध जाऊँगा ऐसी कभी, चिन्ता न उसके चित रहे।।३०२।।

अपराधी जिय 'मैं बँधूँगा', इस तरह नित शंकित रहे।
पर निरपराधी आतमा, भयरहित है निःशंक है।।३०३।।

ॐ ह्रीं परग्राही-अपराधी-बन्धकः स्वग्राही-निरपराधी-अबन्धकः इति प्ररूपक -श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२०७।।

अब, 'अपराध और निरपराध का स्वरूप' दो गाथाओं में कहते हैं –

(हरिगीत)

साधित अराधित राध अर, संसिद्धि सिद्धि एक है।
बस! राध से जो रहित है, वह आतमा अपराध है।।३०४।।

निरपराध है जो आतमा, वह आतमा नि:शंक है।
'मैं शुद्ध हूँ' – यह जानता, आराधना में रत रहे।।३०५।।

ॐ ह्रीं अध्यात्मदृष्टया अपराध-निरपराधस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२०८।।

अब, आगामी कलश में 'अपराध व निरपराध का फल' बताते हैं –

(हरिगीत)

जो सापराधी निरन्तर वे, कर्म-बन्धन कर रहे।
जो निरपराधी वे कभी भी, कर्म-बन्धन ना करें।।
अशुद्ध जाने आतमा को, सापराधी जन सदा।
शुद्धात्म-सेवी निरपराधी, शान्ति सेवें सर्वदा।।१८७।।

ॐ ह्रीं अपराध-निरपराधफलनिरूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२०९।।

अब, 'जब अपराध का प्रायश्चित्त (व्यवहार-प्रतिक्रमणादि) कर लेने पर, उस अपराध के दोष से मुक्त हो जाते हैं तो फिर निरपराध होने के लिए शुद्धोपयोग की क्या आवश्यकता है? – ऐसे व्यवहार-शास्त्र के आधार से किये गये शिष्य के प्रश्न का उत्तर दो गाथाओं में देते हैं –

(हरिगीत)

प्रतिक्रमण अर प्रतिसरण, परिहार निवृत्ति धारणा।
निन्दा गरहा और शुद्धि, अष्टविध विषकुम्भ हैं।।३०६।।

अप्रतिक्रमण अप्रतिसरण, अर अपरिहार अधारणा।
अनिन्दा अनिवृत्त्यशुद्धि अगर्हा अमृतकुम्भ हैं।।३०७।।

ॐ ह्रीं प्रतिक्रमणादीन् विषकुम्भाः अप्रतिक्रमणादीन्नमृतकुम्भाश्चेति प्रतिपादक -श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२१०।।

अब, 'व्यवहार-प्रतिक्रमण की हेयता जानकर, प्रमादी न होते हुए आत्मध्यान में रत रहने की प्रेरणा', आगामी कलश में आचार्यदेव देते हैं –

(हरिगीत)

अरे! मुक्तिमार्ग में, चापल्य अर परमाद को।
है नहीं कोई जगह, कोई और आलम्बन नहीं।।
बस! इसलिए ही जब तलक, आनन्दघन निज आतमा।
की प्राप्ति न हो तब तलक तुम, नित्य ध्यावो आतमा।।१८८।।

ॐ ह्रीं निष्प्रमादतया-आत्मध्यानप्रेरक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं... ।।२११।।

अब आगामी तीन कलशों में कहते हैं कि 'प्रमाद छोड़कर आत्म-लीन ही रहना चाहिए, चूँकि ऐसा करनेवाले मुनिवर ही बन्ध-मुक्त होते हैं' –

(रोला)

प्रतिक्रमण भी अरे! जहाँ विष-जहर कहा हो।
अमृत कैसे कहें वहाँ अप्रतिक्रमण को।।
अरे! प्रमादी लोग अधोऽध: क्यों जाते हैं?।
इस प्रमाद को त्याग ऊर्ध्व में क्यों नहीं जाते?।।१८९।।

कषायभाव से आलस करना ही प्रमाद है।
यह प्रमाद का भाव शुद्ध कैसे हो सकता?।।
निजरस से परिपूर्ण भाव में अचल रहें जो।
अल्पकाल में वे मुनिवर ही बन्ध-मुक्त हों।।१९०।।

अरे! अशुद्धता करनेवाले परद्रव्यों को।
अतः दूर से त्याग स्वयं में लीन रहें जो।।
अपराधों से दूर बन्ध का नाश करें वे।
शुद्धभाव को प्राप्त मुक्त हो जाते हैं वे।।१९१।।

ॐ ह्रीं निष्प्रमादतया स्वरसनिर्भरमुनय एव मुक्तिपात्राः इति प्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२१२।।

अब, पुनः अधिकार के अन्त में 'बन्ध को छेद कर, मुक्ति का अनुभव करनेवाले ज्ञान की महिमा' करके उसकी स्तुति करते हैं –

(रोला)

बन्ध–छेद से मुक्त हुआ यह शुद्ध आतमा।
निजरस से गम्भीर धीर परिपूर्ण ज्ञानमय।।
उदित हुआ है अपनी महिमा में महिमामय।
अचल अनाकुल अज अखण्ड यह ज्ञानदिवाकर।।१९२।।

ॐ ह्रीं मोक्षप्रदायक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।२१३।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

जयमाला

(दोहा)

बन्ध-मोक्ष अधिकार की, पूजन हुई पवित्र।
शान्ति प्राप्त सबको हुई, थे जितने भी भव्य।।१।।

(मानव)

कर्मों से नहीं बँधा मैं, न हिंसा से चेतन की।
तन-मन-वचनों से भी मैं, अब तक तो नहीं बँधा हूँ।।
पंचेन्द्रिय के भोगों से, बन्धन में नहीं पड़ा हूँ।
रागादिक भावों से ही, बन्धन में यहाँ पड़ा हूँ।।२।।

यद्यपि यह सारी दुनिया, कर्मों से भरी हुई है।
केवलि का योग जगत् में, सबसे ज्यादा चलता है।।
जीवों का मरण जगत में, तो होता ही रहता है।
भोगों को भी रागीजन, दिन-रात भोगते रहते।।३।।

उनके कारण ज्ञानी को, रे! बन्ध नहीं होता है।
रे! राग-द्वेष से बँधते, सारे अज्ञानी जग में।।
सारे संयोग मिलें पर, यदि राग–द्वेष ही ना हो।
तो बन्ध नहीं होता है, निर्बन्ध सदा वे रहते।।४।।

अज्ञानी मिथ्यादृष्टि, भोगों में नहीं दिखे पर।
वे रागादिक होने से, बँधते हैं अरे! निरन्तर।।
कर्मादिक से ना बँधते, ना क्रियाकाण्ड से छूटें।
रागादिक से बँधते हैं, वैराग्यभाव से छूटें।।५।।

यह निश्चित जानो भाई! ना मारे कोई किसी को।
मरते हैं सभी समय पर, जीवित रहते जीवन भर।।
रे ! आयुकर्म के क्षय से, मरते हैं सभी जनावर।
अर आयुकर्म - उदय से, जीवित रहते हैं वे सब।।६।।

सुख-दुःख अर जीना-मरना, करते हैं अपना-अपना।
नहिं कोई किसी का करता, करते सब अपना-अपना।।
अपने भावों की कर्ता–भोक्ता है सारी दुनिया।
अपने भावों के फल को, चखती है सारी दुनिया।। ७।।

यद्यपि यह बात सही है, कि कर्मोदय तो होता है।
अनुरूप उसी के सबका, परिणमन सदा होता है।।
यह बात भले हो लेकिन, अनुरूप परिणमन होता।
अनुरूप भले हो भाई, कर्मोदय कुछ नहिं करता।।८।।

कर्मोदय कुछ नहीं करता, ना कर्मों से कुछ होता।
बस! बात मात्र इतनी है, जब कार्य स्वयं है होता।।
उसके अनुकूल सदा ही, कर्मोदय भी है होता।
जब कार्य स्वयं होता तब, अनुकूल निमित भी होता।।९।।

हों बन्ध-मोक्ष अपने से, कर्मों से कभी न होंगे।
हम पूरे उत्तरदायी, यह बात समझाना है भाई!।।
यह समझा कर सबको, अपनाना भी है भाई !।
हम पूरे उत्तरदायी, अब अधिक कहें क्या भाई!।।१०।।

(दोहा)

बन्धन का कारण अरे! एकमात्र है राग।
राग-आग को त्याग कर, निज को निज में पाग।।११।।

ॐ ह्रीं बन्ध-मोक्षस्वरूपप्ररूपक-बन्धमोक्षाधिकारराभ्यां जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

इसप्रकार पूरण हुआ, बन्ध-मोक्ष अधिकार।
अब अगले अधिकार में, सर्वविशुद्धिद्वार।।१२।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

८

सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार पूजन

स्थापना

(दोहा)

उक्त भाव हैं स्वांग सब, सर्वविशुद्ध स्वभाव।
स्वांग नहीं वह मूलतः, आतम-वस्तु स्वभाव।।१।।
शुद्ध-बुद्ध चैतन्यघन, सब द्रव्यों से भिन्न।
ज्ञान-स्वभावी आतमा, ही है सर्वविशुद्ध।।२।।
स्वामी-कर्ता-भोक्ता, कोई भी सम्बन्ध।
नहीं किसी से रंच भी, इसका नाम विशुद्ध।।३।।
सर्वविशुद्ध इस ज्ञान की, महिमा अपरम्पार।
यह आतम का रूप निज, इसका आर न पार।।४।।
यही परम परमात्मा, यह देवन का देव।
इसकी महिमा अगम हम, करते इसकी सेव।।५।।

ॐ ह्रीं सर्वविशुद्धज्ञानस्वरूपप्ररूपक-सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं सर्वविशुद्धज्ञानस्वरूपप्ररूपक-सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार!! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं सर्वविशुद्धज्ञानस्वरूपप्ररूपक-सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार!!! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्। (इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(वीर)

जल

यह जल मल-शोधक है प्रसिद्ध,यह अपना काम करेगा ही।
इससे क्या हम अभिलाष करें, जो होता है वह होगा ही।।
यह सार समयसार का है, यह है स्वभाव परमातम का।
सर्वविशुद्धज्ञान है यह, यह है स्वभाव निज आतम का।।

ॐ ह्रीं सर्वविशुद्धज्ञानस्वरूपप्ररूपक-सर्वविशुद्धज्ञानाधिकाराय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

शीतल चन्दन भव ताप हरे चन्दन सा शान्त आतमा है।
निज आतम का जो ध्यान धरे यह भी भव का संताप हरे।।
यह सार समयसार का है, यह है स्वभाव परमातम का।
सर्वविशुद्धज्ञान है यह, यह है स्वभाव निज आतम का।।

ॐ ह्रीं सर्वविशुद्धज्ञानस्वरूपप्ररूपक-सर्वविशुद्धज्ञानाधिकाराय संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत

अक्षत अक्षतसम यह आतम, यह अज अखण्ड अविनाशी है।
इसके आश्रय से सुनो भव्य, पर्यय अक्षत हो जाती है।।
यह सार समयसार का है, यह है स्वभाव परमातम का।
सर्वविशुद्धज्ञान है यह, यह है स्वभाव निज आतम का।।

ॐ ह्रीं सर्वविशुद्धज्ञानस्वरूपप्ररूपक-सर्वविशुद्धज्ञानाधिकाराय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

सुरतरु के पुष्पों के समान, यह आतम परम अहिंसक है।
इसके आश्रय से सुनो भव्य, होती पर्याय अहिंसक है।।
यह सार समयसार का है, यह है स्वभाव परमातम का।
सर्वविशुद्धज्ञान है यह, यह है स्वभाव निज आतम का।।

ॐ ह्रीं सर्वविशुद्धज्ञानस्वरूपप्ररूपक-सर्वविशुद्धज्ञानाधिकाराय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नैवेद्य

मीठे पकवानों–सा मीठा यह, अरस आतमा रसमय है।
इस आतम के रस से अपना, जीवन हो जाता रसमय है।।
यह सार समयसार का है, यह है स्वभाव परमातम का।
सर्वविशुद्धज्ञान है यह, यह है स्वभाव निज आतम का।।

ॐ ह्रीं सर्वविशुद्धज्ञानस्वरूपप्ररूपक-सर्वविशुद्धज्ञानाधिकाराय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप

ज्यों स्वपर प्रकाशक दीपक है, त्यों स्वपरप्रकाशक आतम है।
जो करे प्रकाश निजातम का, ऐसा आतम परमातम है।।
यह सार समयसार का है, यह है स्वभाव परमातम का।
सर्वविशुद्धज्ञान है यह, यह है स्वभाव निज आतम का।।

ॐ ह्रीं सर्वविशुद्धज्ञानस्वरूपप्ररूपक-सर्वविशुद्धज्ञानाधिकाराय मोहान्धकार विनाशयनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप

कर्मों की दाहक इस दशांग से कर्म आज तक जले नहीं।
पर ध्यान-अग्नि से कर्मों की राशि जलने लग जाती है।।
यह सार समयसार का है यह है स्वभाव परमातम का।
सर्वविशुद्धज्ञान है यह यह है स्वभाव निज आतम का।।

ॐ ह्रीं सर्वविशुद्धज्ञानस्वरूपप्ररूपक-सर्वविशुद्धज्ञानाधिकाराय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

पुण्य-पाप का फल तो हरदम, जग में मिलता रहता है।
पुण्य-पाप से पार धर्म का फल, मुक्ति में मिलता है।।
यह सार समयसार का है, यह है स्वभाव परमातम का।
सर्वविशुद्धज्ञान है यह, यह है स्वभाव निज आतम का।।

ॐ ह्रीं सर्वविशुद्धज्ञानस्वरूपप्ररूपक-सर्वविशुद्धज्ञानाधिकाराय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

अष्टद्रव्यमय अर्घ्य अरे! चरणों में अर्पण करता हूँ।
जो कुछ है मेरे पास प्रभो! सब यहीं समर्पण करता हूँ।।
यह सार समयसार का है, यह है स्वभाव परमातम का।
सर्वविशुद्धज्ञान है यह, यह है स्वभाव निज आतम का।।

ॐ ह्रीं सर्वविशुद्धज्ञानस्वरूपप्ररूपक-सर्वविशुद्धज्ञानाधिकाराय अनर्घ्यपद प्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा। (इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अर्घ्यावली

(दोहा)

उक्त भाव हैं स्वांग सब, सर्वविशुद्धस्वभाव।
स्वांग नहीं वह मूलतः, आतम-वस्तु स्वभाव।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

इस अधिकार के प्रारम्भ में आचार्य अमृतचन्द्रदेव, सर्वविशुद्धज्ञान को रंगमंच पर प्रवेश कराके शुद्धात्मा की महिमास्वरूप मंगलाचरण करते हैं –

(रोला)

जिसने कर्तृ-भोक्तृभाव सब नष्ट कर दिये,
बन्ध-मोक्ष की रचना से जो सदा दूर है।
है अपार महिमा जिसकी टंकोत्कीर्ण जो;
ज्ञानपुंज वह शुद्धातम शोभायमान है।।१९३।।

ॐ ह्रीं सर्वविशुद्धज्ञानपुंजस्वरूप-शुद्धात्मने नमः अर्घ्यं..... ।।२१४।।

सर्वप्रथम, 'आत्मा का अकर्तृत्व-स्वभाव', एक कलश और चार गाथाओं में दृष्टान्त सहित स्पष्ट करते हैं –

(दोहा)

जैसे भोक्तृस्वभाव नहीं, वैसे कर्तृस्वभाव।
कर्तापन अज्ञान से, ज्ञान अकारकभाव।।१९४।।

(हरिगीत)

है जगत् में कटकादि गहनों, से सुवर्ण अनन्य ज्यों।
जिन गुणों में जो द्रव्य उपजे, उनसे जान अनन्य त्यों।।३०८।।
जीव और अजीव के परिणाम जो जिनवर कहे।
वे जीव और अजीव जानो अनन्य उन परिणाम से।।३०९।।
ना करे पैदा किसी को बस इसलिए कारण नहीं।
किसी से ना हो अतः यह आतमा कारज नहीं।।३१०।।
कर्म आश्रय होय कर्ता कर्ता आश्रय कर्म भी।
यह नियम अन्यप्रकार से सिद्धि न कर्ता–कर्म की।।३११।।

ॐ ह्रीं आत्मनोऽकर्तृत्वस्वभावप्रकाशक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं... ।।२१५।।

अब, आगामी कलश में कहते हैं कि 'यद्यपि आत्मा अकर्ता है, फिर भी उसे बन्ध हो रहा है, यह अज्ञान की ही महिमा है' –

(रोला)

निजरस से सुविशुद्ध जीव शोभायमान है।
झलके लोकालोक ज्योति स्फुरायमान है।।
अहो! अकर्ता आतम फिर भी बन्ध हो रहा।
यह अपार महिमा जानो अज्ञानभाव की।।१९५।।

ॐ ह्रीं अज्ञानमहिमाप्ररूपक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं.... ।।२१६।।

आगामी दो गाथाओं में 'आत्मा और कर्मप्रकृति में निमित्त-नैमित्तिक भाव से ही कर्ता-कर्म सम्बन्ध, बन्ध और संसार होता है,' यह कहते हैं –

(हरिगीत)

उत्पन्न होता नष्ट होता, जीव प्रकृति-निमित्त से।
उत्पन्न होती नष्ट होती, प्रकृति जीव-निमित्त से।।३१२।।
यों परस्पर निमित्त से हो, बन्ध जीव रु कर्म का।
बस! इसतरह ही उभय से, संसार की उत्पत्ति हो।।३१३।।

ॐ ह्रीं आत्म-प्रकृत्योः निमित्त-नैमित्तिकभावप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२१७।।

अब, दो गाथाओं में यह कहते हैं कि 'प्रकृति-निमित्तक परिणमन करने वाला मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी और असंयत है तथा ऐसा परिणमन छोड़नेवाला सम्यग्दृष्टि, ज्ञानी और संयमी है' –

(हरिगीत)

जब तक न छोड़े आतमा, प्रकृति-निमित्तक परिणमन।
तब तक रहे अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि एवं असंयत।।३१४।।
जब अनन्ता कर्म का फल, छोड़ दे यह आतमा।
तब मुक्त होता बन्ध से, सद्दृष्टि ज्ञानी संयमी।।३१५।।

ॐ ह्रीं मिथ्यादृष्टि-सम्यग्दृष्टिस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२१८।।

अब, आगामी कलश में कहते हैं कि 'आत्मा, अज्ञान से भोक्ता बनता है, ज्ञान से अभोक्ता ही है' –

(दोहा)

जैसे कर्तृस्वभाव नहीं, वैसे भोक्तृस्वभाव।
भोक्तापन अज्ञान से, ज्ञान अभोक्ताभाव।।१९६।।

ॐ ह्रीं अभोक्तास्वभावप्रकाशक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं.... ।। २१९।।

आगामी एक गाथा और एक कलश में कहते हैं कि 'प्रकृति-स्वभाव-स्थित अज्ञानी भोक्ता है और प्रकृति-स्वभाव-विरत ज्ञानी अभोक्ता है; अतः अज्ञानभाव छोड़कर शुद्धात्ममय ज्ञानभाव को अपनाने की प्रेरणा देते हैं –

(हरिगीत)

प्रकृतिस्वभाव–स्थित अज्ञजन ही, नित्य भोगें कर्मफल।
पर नहीं भोगें विज्ञजन, वे जानते हैं कर्मफल।।३१६।।

(रोला)

प्रकृतिस्वभावरत अज्ञानी हैं सदा भोगते।
प्रकृतिस्वभाव से विरत ज्ञानिजन कभी न भोगें।।
निपुणजनों ! निजशुद्धातममय ज्ञानभाव को।
अपनाओ तुम सदा, त्याग अज्ञानभाव को।।१९७।।

ॐ ह्रीं शुद्धात्ममयज्ञानभावप्रेरक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं .... ।।२२०।।

अब दो गाथाओं एवं एक कलश में यह सुनिश्चित करते हैं कि 'अज्ञानी विषय-भोगों का भोक्ता है और ज्ञानी भोक्ता नहीं है, अभोक्ता ही है' –

(हरिगीत)

गुड़-दूध पीता हुआ भी, निर्विष न होता सर्प ज्यों।
त्यों भलीभाँति शास्त्र पढ़कर, अभवि प्रकृति न तजे।।३१७।।
निर्वेद से सम्पन्न ज्ञानी, मधुर-कड़वे नेकविध।
वे जानते हैं कर्मफल को, हैं अवेदक इसलिए।।३१८।।

(सोरठा)

निश्चल शुद्धस्वभाव, ज्ञानी करे न भोगवे।
जाने कर्मस्वभाव, इस कारण वह मुक्त है।।१९८।।

ॐ ह्रीं अज्ञानिनः वेदकः - ज्ञानिनोऽवेदकश्चेति-स्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।। २२१ ।।

अब, आगामी दो गाथाओं में इस प्रकरण का उपसंहार करते हुए दृष्टि (नेत्र) का उदाहरण देकर यह सिद्ध करते हैं कि 'ज्ञान, नेत्र के समान अपने विषय का कर्ता-भोक्ता नहीं है, मात्र ज्ञाता है'; इसी गाथा के बाद आचार्य जयसेन ने मोक्ष अधिकार का समापन किया है, जिसमें 'परम पारिणामिकभाव के स्वरूप' को अत्यन्त स्पष्टता के साथ समझाया है –

(हरिगीत)

ज्ञानी करे, भोगे नहीं बस! सभी विध-विध करम को।
वह जानता है कर्मफल - बन्ध, पुण्य एवं पाप को ।। ३१९ ।।

ज्यों दृष्टि त्यों ही ज्ञान जग में, है अकारक अवेदक।
जाने करम के बन्ध-उदय, मोक्ष एवं निर्जरा ।। ३२० ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानिनः अकारक-अवेदकस्वरूपप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।। २२२ ।।

अब, एक कलश और तीन गाथाओं में यह कहते हैं कि 'कर्तृत्व के अज्ञान सहित मुमुक्षुओं को भी सामान्यजनों की तरह मोक्ष नहीं होता' –

(हरिगीत)

निज आतमा ही करे सबकुछ, मानते अज्ञान से।
हों यद्यपि वे मुमुक्षु पर, रहित आतमज्ञान से ।।
अध्ययन करें, चारित्र पालें, और भक्ति करें पर।
लौकिकजनों वत् उन्हें भी तो, मुक्ति की प्राप्ति न हो ।। १९९ ।।

(हरिगीत)

जगत्-जन यों कहें विष्णु करे सुर-नरलोक को।
रक्षा करूँ षट्काय की, यदि श्रमण भी माने यही ।। ३२१ ।।
तो ना श्रमण अर लोक के, सिद्धान्त में अन्तर रहा।
सम मान्यता में विष्णु एवं, आतमा कर्ता रहा ।। ३२२ ।।
इस तरह कर्तृत्व से नित, ग्रसित लोक रु श्रमण को।
रे ! मोक्ष दोनों का दिखाई, नहीं देता है मुझे ।। ३२३ ।।

ॐ ह्रीं परकर्तृत्वसद्भावे मुमुक्षुणामपि मोक्षाऽभावप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।। २२३ ।।

अब 'आत्मा, परद्रव्यों का कर्ता क्यों नहीं है?' यह एक कलश में सतर्क सिद्ध करते हैं –

(दोहा)

जब कोई सम्बन्ध ना, पर अरु आतम माँहि।
तब कर्ता परद्रव्य का, किसविध आत्म कहाँहि।।२००।।

ॐ ह्रीं परद्रव्याऽऽत्मत्त्वयोः सर्वसम्बन्धप्रतिषेधक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२२४।।

अब, तीन गाथाओं में कहते हैं कि 'भले ही अज्ञानी, परद्रव्य को अपना कहें, उनका कर्ता-धर्ता अपने को मानें, पर ज्ञानीजन ऐसा नहीं मानते' –

(हरिगीत)

अतत्त्वविद् व्यवहार ग्रह, परद्रव्य को अपना कहें।
पर तत्त्वविद् जाने कि पर-परमाणु भी मेरा नहीं।।३२४।।

ग्राम जनपद राष्ट्र मेरा, कहे कोई जिसतरह।
किन्तु वे उसके नहीं हैं, मोह से ही वह कहे।।३२५।।

इसतरह जो 'परद्रव्य मेरा' – जानकर अपना करे।
संशय नहीं वह ज्ञानी, मिथ्यादृष्टि ही है जानना।।३२६।।

'मेरे नहीं ये' – जानकर, तत्त्वज्ञ ऐसा मानते।
है अज्ञता कर्तृत्वबुद्धि, लोक एवं श्रमण की।।३२७।।

ॐ ह्रीं अज्ञ-तत्त्वज्ञयोः स्वरूपप्रकाशक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२२५।।

अब, पुनः कहते हैं कि 'जब दो द्रव्यों के बीच कोई सम्बन्ध ही नहीं है तो कर्ता-कर्मभाव कैसे हो सकता है? अतः अपने को अकर्ता ही जानें –

(रोला)

जब कोई सम्बन्ध नहीं है दो द्रव्यों में।
तब फिर कर्ता-कर्मभाव भी कैसे होगा?।।
इसीलिए तो मैं कहता हूँ निज को जानो।
सदा अकर्ता अरे जगतजन! अरे मुनिजन!!।।२०१।।

ॐ ह्रीं सर्वजन-अकर्तृत्वप्रेरक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं.....।।२२६।।

अब, 'वस्तु-स्वभाव को नहीं जाननेवाले अज्ञानी ही भावकर्म के कर्ता होते हैं,' ऐसा एक कलश द्वारा कहते हैं –

(रोला)

इस स्वभाव के सहज नियम जो नहीं जानते,
अरे बिचारे! वे तो डूबे भवसागर में।
विविध कर्म को करते हैं बस इसीलिए वे,
भावकर्म के कर्ता होते अन्य कोई ना।। २०२।।

ॐ ह्रीं वस्तुस्वभावाऽज्ञायकानामेव भावकर्मकर्तृत्वप्ररूपक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २२७।।

आगामी चार गाथाओं एवं एक कलश में सतर्क यह सिद्ध करते हैं कि 'जीव के भावकर्मों का कर्ता जीव ही है, अचेतन-कर्म-प्रकृति नहीं' –

(हरिगीत)

मिथ्यात्व नामक प्रकृति, मिथ्यात्वी करे यदि जीव को।
फिर तो अचेतन प्रकृति ही, कर्तापने को प्राप्त हो।। ३२८।।
अथवा करे यह जीव पुद्गल-दरब के मिथ्यात्व को।
मिथ्यात्वमय पुद्गल-दरब ही, सिद्ध होगा जीव ना।। ३२९।।
यदि जीव प्रकृति उभय मिल, मिथ्यात्वमय पुद्गल करे।
फल भोगना होगा उभय को, उभयकृत मिथ्यात्व का।। ३३०।।
यदि जीव प्रकृति ना करें, मिथ्यात्वमय पुद्गल-दरब।
मिथ्यात्वमय पुद्गल सहज, क्या नहीं यह मिथ्या कहा।। ३३१।।

(रोला)

अरे ! कार्य कर्ता के बिन नहीं हो सकता।
भावकर्म भी एक कार्य है सब जग जाने।।
और पौद्गलिक प्रकृति सदा ही रही अचेतन।
वह कैसे कर सकती चेतन भावकर्म को ?।।
प्रकृति–जीव दोनों ही मिलकर उसे करें यदि।
तो फिर दोनों मिलकर ही फल क्यों ना भोगें?।।
भावकर्म तो चेतन का ही करे अनुसरण।
इसकारण यह जीव कहा है उनका कर्ता।। २०३।।

ॐ ह्रीं जीवस्य भावकर्मकर्तृत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं.. ।।२२८।।

अब, 'सांख्यमत के समान, आत्मा को सर्वथा अकर्ता माननेवालों को कर्तृत्व के सम्बन्ध में जैनदर्शन के स्याद्वाद का स्पष्टीकरण' एक कलश और तेरह गाथाओं में करते हैं –

(रोला)

कोई कर्ता मान कर्म को भावकर्म का,
आतम का कर्तृत्व उड़ाकर अरे! सर्वथा।
और कथंचित् कर्ता आतम कहनेवाली;
स्याद्वादमय जिनवाणी को कोपित करते।।
उन्हीं मोहमोहितमतिवाले अल्पज्ञों के,
सम्बोधन के लिए सहेतुक स्याद्वादमय।
वस्तु का स्वरूप समझाते अरे! भव्यजन!,
अब आगे की गाथाओं में कुन्दकुन्द मुनि।।२०४।।

(हरिगीत)

कर्म अज्ञानी करे अर, कर्म ही ज्ञानी करे।
जिय को सुलावे कर्म ही, अर कर्म ही जागृत करे।।३३२।।
कर्म करते सुखी एवं, दुःखी करते कर्म ही।
मिथ्यात्वमय कर्महि करे, अर असंयमी भी कर्म ही।।३३३।।
कर्म ही जिय को भ्रमाते, ऊर्ध्व-अध-तिरलोक में।
जो कुछ जगत् में शुभ-अशुभ, वह कर्म ही करते रहें।।३३४।।
कर्म करते, कर्म देते, कर्म हरते हैं सदा।
यह सत्य है तो सिद्ध होंगे, अकारक सब आतमा।।३३५।।
नरवेद है महिलाभिलाषी, नार चाहे पुरुष को।
परम्परा आचार्यों से, बात यह श्रुतपूर्व है।।३३६।।
अब्रह्मचारी नहीं कोई, हमारे उपदेश में।
क्योंकि ऐसा कहा है कि, कर्म चाहे कर्म को।।३३७।।
जो मारता है अन्य को, या मारा जावे अन्य से।
परघात नामक कर्म की ही, प्रकृति का यह काम है।।३३८।।

परघात करता नहीं कोई, हमारे उपदेश में।
क्योंकि ऐसा कहा है कि, कर्म मारे कर्म को।।३३९।।
सांख्य के उपदेशसम जो, श्रमण प्रतिपादन करें।
कर्ता प्रकृति उनके यहाँ पर, है अकारक आतमा।।३४०।।
या मानते हो यह कि, मेरा आतमा निज को करे।
तो यह तुम्हारा मानना, मिथ्यास्वभावी जानना।।३४१।।
क्योंकि आतम नित्य है, एवं असंख्य-प्रदेशमय।
ना उसे इससे हीन अथवा, अधिक करना शक्य है।।३४२।।
विस्तार से भी जीव का, जीवत्व लोक-प्रमाण है।
ना होय हीनाधिक कभी, कैसे करे जिय द्रव्य को।।३४३।।
यदी माने रहे ज्ञायक भाव ज्ञानस्वभाव में।
तो भी आतम स्वयं अपने, आतमा को ना करे।।३४४।।

ॐ ह्रीं जीवस्य कथञ्चित् कर्तृत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं.. ।।२२९।।

अब, पुनः 'कर्तृत्व के सम्बन्ध में स्याद्वाद का अनुसरण करने की प्रेरणा' कलश द्वारा देते हैं –

(रोला)

अरे! जैन होकर भी सांख्यों के समान ही,
इस आतम को सदा अकर्ता तुम मत मानो।
भेदज्ञान के पूर्व राग का कर्ता आतम;
भेदज्ञान होने पर सदा अकर्ता जानो।।२०५।।

ॐ ह्रीं कर्तृत्वसम्बन्धी-स्याद्वादग्रहणप्रेरक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२३०।।

अब, 'बौद्धमत के समान आत्मा को सर्वथा क्षणिक मानकर, स्वकर्तृत्व स्वीकार करते हुए भी स्वभोक्तृत्व नकारने वाले अज्ञानियों को' दो कलश और चार गाथाओं में समझाते हैं –

(रोला)

जो कर्ता वह नहीं भोगता इस जगती में,
ऐसा कहते कोई आत्मा क्षणिक मानकर।

नित्यरूप से सदा प्रकाशित स्वयं आतमा,
मानो उनका मोह निवारण स्वयं कर रहा ।।२०६।।

(सोरठा)

वृत्तिमान हो नष्ट, वृत्त्यंशों के भेद से ।
कर्ता-भोक्ता भिन्न, इस भय से मानो नहीं ।।२०७।।

(हरिगीत)

यह आतमा हो नष्ट, कुछ पर्याय से कुछ से नहीं ।
जो भोगता वह करे अथवा, अन्य यह एकान्त ना ।।३४५।।

यह आतमा हो नष्ट, कुछ पर्याय से कुछ से नहीं ।
जो करे भोगे वही अथवा, अन्य यह एकान्त ना ।।३४६।।

जो करे भोगे नहीं वह, सिद्धान्त यह जिस जीव का ।
वह जीव मिथ्यादृष्टि आर्हतमत विरोधी जानना ।।३४७।।

कोई करे कोई भरे, यह मान्यता जिस जीव की ।
वह जीव मिथ्यादृष्टि आर्हतमत विरोधी जानना ।।३४८।।

ॐ ह्रीं कर्तृत्व-भोक्तृत्वसम्बन्धी-अन्यत्वाऽनन्यत्वाऽनेकान्तप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।२३१।।

अब, आत्मा को सर्वथा क्षणिक न मानकर, अभेद आत्मा के अनुभव की प्रेरणा देते हैं –

(रोला)

यह आतम है क्षणिक क्योंकि यह परमशुद्ध है।
जहाँ काल की भी उपाधि की नहीं अशुद्धि ।।
इसी धारणा से छूटा त्यों नित्य आतमा।
ज्यों डोरा बिन मुक्तामणि से हार न बनता ।।२०८।।
कर्ता–भोक्ता में अभेद हो युक्तिवश से,
भले भेद हो अथवा दोनों ही न होवें।
ज्यों मणियों की माला भेदी नहीं जा सके,
त्यों अभेद आतम का अनुभव हमें सदा हो ।।२०९।।

ॐ ह्रीं अभेद-आत्मानुभवप्रेरक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं....।।२३२।।

अब, दो कलश और छह गाथाओं में सोदाहरण कहते हैं कि 'दो भिन्न द्रव्यों के बीच कर्ता-कर्मपना व भोक्ता-भोग्यपना मात्र व्यवहार से ही कहा जाता है; निश्चय से तो यह सब एक द्रव्य में ही होता है' –

(दोहा)

अरे! मात्र व्यवहार से, कर्म रु कर्ता भिन्न।
निश्चयनय से देखिये, दोनों सदा अभिन्न।।२१०।।

(हरिगीत)

ज्यों शिल्पि कर्म करे, परन्तु कर्ममय वह ना बने।
त्यों जीव कर्म करे परन्तु, कर्ममय वह ना बने।।३४९।।
ज्यों शिल्पि करणों से करे, पर करणमय वह ना बने।
त्यों जीव करणों से करे, पर करणमय वह ना बने।।३५०।।
ज्यों शिल्पि करणों को ग्रहे, पर करणमय वह ना बने।
त्यों जीव करणों को ग्रहे, पर करणमय वह ना बने।।३५१।।
ज्यों शिल्पि भोगे कर्मफल, तन्मय परन्तु होय ना।
त्यों जीव भोगे कर्मफल, तन्मय परन्तु होय ना।।३५२।।
संक्षेप में व्यवहार का, यह कथन दर्शाया गया।
अब सुनो! परिणाम-विषयक, कथन जो परमार्थ का।।३५३।।
शिल्पी करे जो चेष्टा, उससे अनन्य रहे सदा।
जीव भी जो करे वह, उससे अनन्य रहे सदा।।३५४।।
उस चेष्टा में मगन शिल्पी, नित्य ज्यों दुःख भोगता।
यह चेष्टा रत जीव भी त्यों, नित्य ही दुःख भोगता।।३५५।।

(दोहा)

अरे! कभी होता नहीं, कर्ता के बिन कर्म।
निश्चय से परिणाम ही, परिणामी का कर्म।।

सदा बदलता ही रहे, यह परिणामी द्रव्य।
एकरूप रहती नहीं, वस्तु की थिति नित्य।।२११।।

ॐ ह्रीं कर्तृ-कर्म-भोक्तृ-भोग्य-भेदाऽभेदप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२३३।।

'निश्चयनय का यह कथन परम सत्य है कि कोई भी वस्तु अन्य वस्तु की कर्ता-भोक्ता नहीं है,' ऐसा सतर्क तीन कलशों में कहते हैं –

(रोला)

यद्यपि आतमराम शक्तियों से है शोभित।
और लोटता बाहर-बाहर परद्रव्यों के।।
पर प्रवेश पा नहीं सकेगा उन द्रव्यों में।
फिर भी आकुल-व्याकुल होकर क्लेश पा रहा।।२१२।।
एक वस्तु हो नहीं कभी भी अन्य वस्तु की।
वस्तु वस्तु की ही है – ऐसा निश्चित जानो।।
ऐसा है तो अन्य वस्तु यदि बाहर लोटे।
तो फिर वह क्या कर सकती है अन्य वस्तु का।।२१३।।
स्वयं परिणमित एक वस्तु यदि परवस्तु का।
कुछ करती है – ऐसा जो माना जाता है।।
वह केवल व्यवहार कथन है निश्चय से तो।
एक दूसरे का कुछ करना शक्य नहीं है।।२१४।।

ॐ ह्रीं निश्चयतः परवस्तुनोऽकर्तृत्वप्ररूपक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२३४।।

इसप्रकार 'कर्ता-कर्म और भोक्ता-भोग्य सम्बन्धी व्यवहार का निषेध' करने के बाद, अब दश गाथाओं और दो कलशों में 'ज्ञाता-ज्ञेय सम्बन्धी व्यवहार का भी निषेध' सोदाहरण स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

ज्यों कलई नहीं है अन्य की, यह कलई तो बस कलई है।
ज्ञायक नहीं त्यों अन्य का, ज्ञायक तो बस ज्ञायक ही है।।३५६।।
ज्यों कलई नहीं है अन्य की, यह कलई तो बस कलईहै।
दर्शक नहीं त्यों अन्य का,– दर्शक तो बस दर्शक ही है।।३५७।।
ज्यों कलई नहीं है अन्य की, यह कलई तो बस कलई है।
संयत नहीं त्यों अन्य का, संयत तो बस संयत ही है।।३५८।।

ज्यों कलई नहीं है अन्य की, यह कलई तो बस कलई है।
दर्शन नहीं त्यों अन्य का, दर्शन तो बस दर्शन ही है।।३५९।।
यह ज्ञान-दर्शन-चरण विषयक, कथन है परमार्थ का।
अब सुनो! अतिसंक्षेप में तुम, कथन नय व्यवहार का।।३६०।।
परद्रव्य को ज्यों श्वेत करती, कलई स्वयं स्वभाव से।
बस! त्यों हि ज्ञाता जानता, परद्रव्य को निजभाव से।।३६१।।
परद्रव्य को ज्यों श्वेत करती, कलई स्वयं स्वभाव से।
बस! त्यों हि दृष्टा देखता, परद्रव्य को निजभाव से।।३६२।।
परद्रव्य को ज्यों श्वेत करती, कलई स्वयं स्वभाव से।
बस त्यों हि ज्ञाता त्यागता, परद्रव्य को निजभाव से।।३६३।।
परद्रव्य को ज्यों श्वेत करती, कलई स्वयं स्वभाव से।
सुदृष्टि त्यों ही श्रद्धता, परद्रव्य को निजभाव से।।३६४।।
यह ज्ञान-दर्शन-चरण विषयक, कथन है व्यवहार का।
अर अन्य पर्यय विषय में भी, इसतरह ही जानना।।३६५।।

(रोला)

एक द्रव्य में अन्य द्रव्य रहता हो - ऐसा;
भासित कभी नहीं होता है ज्ञानीजन को।।
शुद्धभाव का उदय ज्ञेय का ज्ञान, न जाने।
फिर भी क्यों अज्ञानीजन आकुल होते हैं?।।२१५।।
शुद्धद्रव्य का निजरसरूप परिणमन होता।
वह पररूप या पर उसरूप नहीं हो सकते।।
अरे! चाँदनी की ज्यों भूमि नहीं हो सकती।
त्यों ही कभी नहीं हो सकते ज्ञेय ज्ञान के।।२१६।।

ॐ ह्रीं ज्ञाता-ज्ञेय-व्यवहारनिषेधक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं...।।२३५।।

अब, 'ज्ञान-ज्ञेय का भेद जानकर, राग-द्वेष का नाश करके पूर्ण ज्ञान-मय होने की प्रेरणा देते हुए आगामी गाथाओं का सूचक कलश कहते हैं -

(रोला)

तबतक राग-द्वेष होते हैं जबतक भाई!
ज्ञान-ज्ञेय का भेद ज्ञान में उदित नहीं हो।।

ज्ञान–ज्ञेय का भेद समझकर राग–द्वेष को,
मेट पूर्णत: पूर्ण ज्ञानमय तुम हो जावो।।२१७।।

ॐ ह्रीं ज्ञान-ज्ञेय-भेदज्ञानप्रेरक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं... ।।२३६।।

अब, छह गाथाओं में यह कहते हैं कि 'मोह-राग-द्वेषादि विकारी भाव, न तो सम्यग्दृष्टि आत्माओं में हैं और न जड़ विषयों में हैं; वे तो अज्ञानदशा में रहनेवाले अज्ञानी जीव के परिणाम हैं' –

(हरिगीत)

ज्ञान–दर्शन–चरित ना, किंचित् अचेतन विषय में।
इसलिए यह आतमा क्या, कर सके उस विषय में?।।३६६।।
ज्ञान–दर्शन–चरित ना, किंचित् अचेतन कर्म में।
इसलिए यह आतमा क्या, कर सके उस कर्म में?।।३६७।।
ज्ञान–दर्शन–चरित ना, किंचित् अचेतन काय में।
इसलिए यह आतमा क्या, कर सके उस काय में?।।३६८।।
सद्ज्ञान का, सम्यक्त्व का, उपघात चारित्र का कहा।
अन्य पुद्गलद्रव्य का ना, घात किंचित् भी कहा?।।३६९।।
जीव के जो गुण कहे, वे हैं नहीं परद्रव्य में।
बस! इसलिए सद्दृष्टि को है, राग विषयों में नहीं।।३७०।।
अनन्य हैं परिणाम जिय के, राग–द्वेष–विमोह ये।
बस! इसलिए शब्दादि विषयों, में नहीं रागादि ये।।३७१।।

ॐ ह्रीं राग-द्वेष-मोहाः जीवस्याऽज्ञानमयपरिणामप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२३७।।

'तत्त्वदृष्टि से देखा जाए तो राग-द्वेषादि भाव, अज्ञान के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं, अतः उनका क्षय करने की प्रेरणा' कलश द्वारा देते हैं –

(रोला)

यही ज्ञान अज्ञानभाव से राग-द्वेषमय।
हो जाता पर तत्त्वदृष्टि से वस्तु नहीं ये।।
तत्त्वदृष्टि के बल से क्षयकर इन भावों को।
हो जाती है अचल सहज यह ज्योति प्रकाशित।।२१८।।

ॐ ह्रीं तत्त्वदृष्ट्या राग-द्वेष-क्षपणप्रेरक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं..।।२३८।।

अब, आगामी एक कलश और एक गाथा में यह कहते हैं कि 'राग-द्वेष आदि भावों का कर्ता, अन्य द्रव्य नहीं हो सकता' –

(रोला)

तत्त्वदृष्टि से राग-द्वेष भावों का भाई।
कर्ता-धर्त्ता कोई अन्य नहीं हो सकता।।
क्योंकि है अत्यन्त प्रगट यह बात जगत् में।
द्रव्यों का उत्पाद स्वयं से ही होता है।।२१९।।

(हरिगीत)

गुणोत्पादन द्रव्य का, कोई अन्य द्रव्य नहीं करे।
क्योंकि सब ही द्रव्य निज-निज भाव से उत्पन्न हों।।३७२।।

ॐ ह्रीं रागादीनामुत्पादकं परद्रव्यं नास्तीतिप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२३९।।

'जो रागादि की उत्पत्ति में परद्रव्यों का ही दोष देखते हैं, वे अज्ञानी मोह-नदी को पार नहीं करते'; यह बात आगामी दो कलशों में कहते हैं –

(रोला)

राग-द्वेष पैदा होते हैं इस आतम में।
उसमें परद्रव्यों का कोई दोष नहीं है।।
यह अज्ञानी अपराधी है इनका कर्ता।
यह अबोध हो नष्ट कि मैं तो स्वयं ज्ञान हूँ।।२२०।।
अरे राग की उत्पत्ति में परद्रव्यों को।
एकमात्र कारण बतलाते जो अज्ञानी।।
शुद्धबोध से विरहित वे अन्धे जन जग में।
अरे! कभी भी मोहनदी से पार न होंगे।।२२१।।

ॐ ह्रीं रागाद्युत्पत्तौ परद्रव्यदूषण-निषेधक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२४०।।

अब, दश गाथाओं एवं एक कलश में 'परज्ञेयों को जानने व नहीं जानने, इन दोनों स्थितियों में सहजता धारण करने की तर्कसहित प्रेरणा' देते हैं –

(हरिगीत)

स्तवन-निन्दा रूप परिणत, पुद्गलों को श्रवण कर।
मुझको कहे यह मान, तोष-रु-रोष अज्ञानी करें।।३७३।।

शब्दत्व में परिणमित पुद्गल द्रव्य का गुण अन्य है।
इसलिए तुम से ना कहा, तुष-रुष्ट होते अबुध क्यों ?।।३७४।।

शुभ या अशुभ ये शब्द, तुझसे ना कहें कि हमें सुन।
अर आतमा भी कर्णगत, शब्दों के पीछे ना भगे।।३७५।।

शुभ या अशुभ यह रूप तुझसे, ना कहे कि हमें लख।
यह आतमा भी चक्षुगत, वर्णों के पीछे ना भगे।।३७६।।

शुभ या अशुभ यह गन्ध, तुम सूँघो मुझे यह ना कहे।
यह आतमा भी घ्राणगत, गन्धों के पीछे ना भगे।।३७७।।

शुभ या अशुभ यह सरस रस, यह ना कहे कि हमें चख।
यह आतमा भी जीभगत, स्वादों के पीछे ना भगे।।३७८।।

शुभ या अशुभ स्पर्श, तुझसे ना कहें कि हमें छू।
यह आतमा भी कायगत, स्पर्शों के पीछे ना भगे।।३७९।।

शुभ या अशुभ गुण ना कहें, तुम हमें जानो आत्मन्!।
यह आतमा भी बुद्धिगत, सुगुणों के पीछे ना भगे।।३८०।।

शुभ या अशुभ द्रव्य ना कहें, तुम हमें जानो आत्मन्!।
यह आतमा भी बुद्धिगत, द्रव्यों के पीछे ना भगे।।३८१।।

यह जानकर भी मूढ़जन, ना ग्रहें उपशमभाव को।
मंगलमती को ना ग्रहें, पर के ग्रहण का मन करें।।३८२।।

(रोला)

जैसे दीपक दीप्य वस्तुओं से अप्रभावित।
वैसे ही ज्ञायक ज्ञेयों से विकृत न हो।।

फिर भी अज्ञानीजन क्यों असहज होते हैं?।
न जाने क्यों व्याकुल हो विचलित होते हैं।।२२२।।

ॐ ह्रीं परज्ञेयप्रति-सहजज्ञातृत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२४१।।

'अपने स्वभाव का नित्य स्पर्श करनेवाले ज्ञानी, चारित्र के बल से कर्म-चेतना व कर्मफल-चेतना से रहित होकर, ज्ञान-चेतना को प्राप्त होते हैं', यह आगामी कलश में कहते हैं –

(रोला)

राग-द्वेष से रहित भूत-भावी कर्मों से।
मुक्त स्वयं को वे नित ही अनुभव करते हैं।।
और स्वयं में रत रह ज्ञानमयी चेतनता।
को धारण कर निज में नित्य मगन रहते हैं।।२२३।।

ॐ ह्रीं कर्मचेतना-कर्मफलचेतना-रहित-ज्ञानचेतनाप्रेरक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२४२।।

अब, आगामी चार गाथाओं में यह कहते हैं कि 'भूत-भविष्य-वर्तमान काल सम्बन्धी शुभाशुभ भावों से निवृत्त होकर, अपने ज्ञान-स्वभाव में वर्तना ही निश्चय प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान-आलोचना व चारित्र है' –

(हरिगीत)

शुभ-अशुभ कर्म अनेकविध हैं, जो किये गतकाल में।
उनसे निवर्तन जो करे वह, आतमा प्रतिक्रमण है।।३८३।।

बँधेंगे जिस भाव से, शुभ-अशुभ कर्म भविष्य में।
उससे निवर्तन जो करे, वह जीव प्रत्याख्यान है।।३८४।।

शुभ-अशुभ भाव अनेकविध, हो रहे सम्प्रति काल में।
इस दोष का ज्ञाता रहे, वह जीव है आलोचना।।३८५।।

जो करें नित प्रतिक्रमण एवं, करें नित आलोचना।
जो करें प्रत्याख्यान नित, चारित्र हैं वे आतमा।।३८६।।

ॐ ह्रीं निश्चयप्रतिक्रमणादिस्वरूपप्रकाशक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२४३।।

'अज्ञान-चेतना बन्ध की कर्ता होने से हेय है, अतः ज्ञान-चेतना का ही अनुसरण करने की प्रेरणा' इस कलश में दे रहे हैं –

(रोला)

ज्ञान-चेतना शुद्ध ज्ञान को करे प्रकाशित।
शुद्ध ज्ञान को रोके नित अज्ञान-चेतना।।
और बन्ध की कर्ता यह अज्ञान-चेतना।
यही जान, चेतो आतम नित ज्ञान-चेतना।।२२४।।

ॐ ह्रीं अज्ञानचेतना-रहित-ज्ञानचेतनाप्रेरक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।। २४४।।

अब, कहते हैं कि 'कर्म-चेतना व कर्मफल-चेतना, अज्ञान-चेतना होने से हेय हैं –

(हरिगीत)

जो कर्मफल को वेदते, निजरूप मानें करमफल।
हैं बाँधते वे जीव दुःख के बीज वसुविध करम को।।३८७।।
जो कर्मफल को वेदते, मानें करमफल मैं किया।
हैं बाँधते वे जीव दुःख के बीज वसुविध करम को।।३८८।।
जो कर्मफल को वेदते हों, सुखी अथवा दुःखी हों।
हैं बाँधते वे जीव दुःख के बीज वसुविध करम को।।३८९।।

ॐ ह्रीं कर्मचेतना-कर्मफलचेतनायाः हेयत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२४५।।

अब, 'भूत-वर्तमान-भविष्य के सभी कर्मों से संन्यास की भावना हेतु निश्चयप्रतिक्रमण-आलोचना-प्रत्याख्यानपूर्वक परमशुद्धनिश्चयनय के विषयभूत शुद्ध-बुद्ध-चैतन्यमय आत्मा में ही रमण करने की भावना' पाँच कलशों में भाते हैं –

(रोला)

भूत भविष्यत् वर्तमान के सभी कर्म कृत-।
कारित अर अनुमोदनादि मैं सभी ओर से।।

सबका कर परित्याग हृदय से वचन–काय से।
अवलम्बन लेता हूँ परम निष्कर्मभाव से।।२२५।।
मोहभाव से भूतकाल में कर्म किये जो।
उन सबका ही प्रतिक्रमण करके अब मैं तो।।
वर्त रहा हूँ अरे! निरन्तर स्वयं स्वयं के।
शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम निष्कर्म आत्म में।।२२६।।
मोहभाव से वर्तमान में कर्म किये जो।
उन सबका आलोचन करके ही अब मैं तो।।
वर्त रहा हूँ अरे! निरन्तर स्वयं स्वयं के।
शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम निष्कर्म आत्म में।।२२७।।
नष्ट हो गया मोहभाव जिसका ऐसा मैं।
करके प्रत्याख्यान भाविकर्मों का अब तो।।
वर्त रहा हूँ अरे! निरन्तर स्वयं स्वयं के।
शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम निष्कर्म आत्म में।।२२८।।
तीन काल के सब कर्मों को छोड़ इसतरह।
परमशुद्धनिश्चयनय का अवलम्बन लेकर।।
निर्मोही हो वर्त रहा हूँ स्वयं स्वयं के।
शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम निष्कर्म आत्म में।।२२९।।

ॐ ह्रीं सकलकर्मसंन्यासहेतु-शुद्धबुद्धचैतन्याऽऽत्मावलम्बनप्रेरक-श्रीज्ञान-ज्योतिषे नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२४६।।

अब, 'कर्मफल के संन्यास की भावना' चार कलशों में भाते हैं –

(रोला)

कर्म वृक्ष के विषफल मेरे बिन भोगे ही।
खिर जायें बस! यही भावना भाता हूँ मैं।।
क्योंकि मैं तो वर्त रहा हूँ स्वयं स्वयं के।
शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम निष्कर्म आत्म में।।२३०।।

सब कर्मों के फल से संन्यासी होने से।
आतम से अतिरिक्त प्रवृत्ति से निवृत्त होकर।।
चिद्लक्षण आतम को अतिशय भोग रहा हूँ।
यह प्रवृत्ति ही बनी रहे बस! अमितकाल तक।।२३१।।

(वसन्ततिलका)

रे ! पूर्वभावकृत कर्म-जहर-तरु के।
अज्ञानमय फल नहीं जो भोगते हैं।।
अर तृप्त स्वयं में चिरकाल तक वे।
निष्कर्म सुखमय दशा को भोगते हैं।।२३२।।

रे ! कर्मफल से संन्यास लेकर।
सद्ज्ञान-चेतना को निज में नचाओ।।
प्याला पियो नित प्रशमरस का निरन्तर।
सुख में रहो अभी से चिरकाल तक तुम।।२३३।।

ॐ ह्रीं सकलकर्मसंन्यासहेतु-ज्ञानचेतनाप्रेरक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२४७।।

अब, 'शुभाशुभक्रिया और शुभाशुभभावों के कर्तृत्व और भोक्तृत्व का निषेध करके, कर्म-चेतना व कर्मफल-चेतना से संन्यास की भावना करने के बाद, अब ज्ञेय पदार्थों से एकत्व-ममत्व का निषेध', एक कलश और पन्द्रह गाथाओं में करते हैं –

(दोहा)

अपने में ही मगन है, अचल अनाकुल ज्ञान।
यद्यपि जाने ज्ञेय को, तदपि भिन्न ही जान।।२३४।।

(हरिगीत)

शास्त्र ज्ञान नहीं है क्योंकि, शास्त्र कुछ जाने नहीं।
बस इसलिए ही शास्त्र अन्य, रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें।।३९०।।

शब्द ज्ञान नहीं है क्योंकि, शब्द कुछ जाने नहीं।
बस इसलिए ही शब्द अन्य, रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें।।३९१।।

रूप ज्ञान नहीं है क्योंकि, रूप कुछ जाने नहीं।
बस इसलिए ही रूप अन्य, रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें।।३९२।।

वर्ण ज्ञान नहीं है क्योंकि, वर्ण कुछ जाने नहीं।
बस इसलिए ही वर्ण अन्य, रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें।।३९३।।

गन्ध ज्ञान नहीं है क्योंकि, गन्ध कुछ जाने नहीं।
बस इसलिए ही गन्ध अन्य, रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें।।३९४।।

रस नहीं है ज्ञान क्योंकि, रस भी कुछ जाने नहीं।
बस इसलिए ही रस अन्य, रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें।।३९५।।

स्पर्श ज्ञान नहीं है क्योंकि, स्पर्श कुछ जाने नहीं।
बस इसलिए ही स्पर्श अन्य, रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें।।३९६।।

कर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि, कर्म कुछ जाने नहीं।
बस इसलिए ही कर्म अन्य, रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें।।३९७।।

धर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि, धर्म कुछ जाने नहीं।
बस इसलिए ही धर्म अन्य, रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें।।३९८।।

अधर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि, अधर्म कुछ जाने नहीं।
बस इसलिए ही अधर्म अन्य, रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें।।३९९।।

काल ज्ञान नहीं है क्योंकि, काल कुछ जाने नहीं।
बस इसलिए ही काल अन्य, रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें।।४००।।

आकाश ज्ञान नहीं है क्योंकि, आकाश कुछ जाने नहीं।
बस! इसलिए ही आकाश अन्य, रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें।।४०१।।

अध्यवसान ज्ञान नहीं है क्योंकि, वे अचेतन जिन कहे।
इसलिए अध्यवसान अन्य रु, ज्ञान अन्य श्रमण कहें।।४०२।।

नित्य जाने जीव बस! इसलिए ज्ञायकभाव है।
है ज्ञान अव्यतिरिक्त ज्ञायक भाव से यह जानना।।४०३।।

ज्ञान ही समदृष्टि संयम, सूत्र पूर्वगतांग भी।
सद्धर्म और अधर्म दीक्षा, ज्ञान हैं ह्न यह बुध कहें।।४०४।।

ॐ ह्रीं सकलज्ञेयपदार्थ-भेदविज्ञानप्रेरक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं .. ।।२४८।।

'आत्मा, त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति से सम्पन्न होने के कारण, वास्तव में पर का ग्रहण और त्याग तो करता ही नहीं है; अतः स्वयं में जमने-रमनेरूप शुद्धोपयोग ही निश्चय प्रतिक्रमणादि हैं', ऐसा दो कलशों में कहते हैं –

(हरिगीत)

है अन्य द्रव्यों से पृथक्, विरहित ग्रहण अर त्याग से।
यह ज्ञाननिधि निज में नियत, वस्तुत्व को धारण किये।।
है आदि-अन्त विभाग-विरहित, विस्फुरित आनन्दघन।
हो सहज महिमा प्रभाभास्वर, शुद्ध अनुपम ज्ञानघन।।२३५।।
जिनने समेटा स्वयं ही, सब शक्तियों को स्वयं में।
सब ओर से धारण किया हो, स्वयं को ही स्वयं में।।
मानो उन्हीं ने त्यागने के, योग्य जो वह तज दिया।
अर जो ग्रहण के योग्य वह सब, भी उन्हीं ने पा लिया।।२३६।।

ॐ ह्रीं त्यागोपादानशून्यत्वशक्तिप्ररूपक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२४९।।

अब, एक कलश और तीन गाथाओं में यह कहते हैं कि 'अमूर्तिक आत्मा, पुद्‌गलमयी मूर्तिक आहार ग्रहण नहीं कर सकता है' –

(सोरठा)

ज्ञानस्वभावी जीव परद्रव्यों से भिन्न ही।
कैसे कहें सदेह जब आहारक ही नहीं।।२३७।।

(हरिगीत)

आहार पुद्‌गलमयी है, बस! इसलिए है मूर्तिक।
ना अहारक इसलिए ही, यह अमूर्तिक आतमा।।४०५।।

परद्रव्य का ना ग्रहण हो, ना त्याग हो इस जीव के।
क्योंकि प्रायोगिक तथा वैस्रसिक स्वयं गुण जीव के।।४०६।।

पर इसलिए शुद्धातमा यह, जीव और अजीव से।
कुछ भी ग्रहण करता नहीं, कुछ भी नहीं है छोड़ता।।४०७।।

ॐ ह्रीं आत्मनोऽनाहारकत्वप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२५०।।

'यदि ज्ञानस्वरूपी आत्मा के देह ही नहीं है, तो फिर नग्न दिगम्बर दशारूप द्रव्यलिंग भी आत्मा का कैसे हो सकता है?; अतः उसके बिना यद्यपि मोक्ष नहीं होता, तथापि सच्चा मुक्तिमार्ग तो निश्चय रत्नत्रयस्वरूप भावलिंग ही है,' यह बात एक कलश और चार गाथाओं में कहते हैं –

(सोरठा)

शुद्धज्ञानमय जीव, के जब देह नहीं कही।
तब फिर यह द्रवलिंग, शिवमग कैसे हो सके।।२३८।।

(हरिगीत)

ग्रहण कर मुनिलिंग या, गृहिलिंग विविध प्रकार के।
यह लिंग ही है मुक्तिमग, यह कहें कतिपय मूढ़जन।।४०८।।

पर मुक्तिमग ना लिंग क्योंकि, लिंग तज अरिहंत जिन।
निज आत्म अरु सद्-ज्ञान-दर्शन-चरित का सेवन करें।।४०९।।

बस! इसलिए गृहिलिंग या मुनिलिंग ना मग-मुक्ति का।
जिनवर कहें बस ज्ञान-दर्शन-चरित ही मग-मुक्ति का।।४१०।।

बस! इसलिए अनगार या, सागार लिंग को त्यागकर।
जुड़ जा स्वयं के ज्ञान-दर्शन-चरणमय शिवपन्थ में।।४११।।

ॐ ह्रीं देहरूपद्रव्यलिंगं निषिध्य निश्चयरत्नत्रयस्वरूपभावलिंग एव मोक्षमार्ग-प्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२५१।।

अब, 'निश्चय रत्नत्रय ही सच्चा मोक्षमार्ग है, अतः उसी के सेवन की प्रेरणा' आगामी कलश और गाथा में देते हैं –

(दोहा)

मोक्षमार्ग बस एक ही, रत्नत्रयमय होय।
अत: मुमुक्षु के लिए, वह ही सेवन योग्य।।२३९।।

(हरिगीत)

मोक्षपथ में थाप निज को, चेतकर निज ध्यान धर।
निज में ही नित्य विहार कर, परद्रव्य में न विहार कर।।४१२।।

ॐ ह्रीं निश्चयरत्नत्रयधारणाय प्रेरक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२५२।।

अब, 'समयसार को कौन प्राप्त करते हैं?' यह कलश द्वारा कहते हैं –

(हरिगीत)

दृग्-ज्ञानमय वृत्त्यात्मक यह, एक ही है मोक्षपथ।
थित रहें, अनुभव करें अर, ध्यावें अहिर्निश जो पुरुष।।

जो अन्य को न छुएँ अर, निज में विहार करें सतत।
वे पुरुष तो अतिशीघ्र ही, समयसार पावें उदित।।२४०।।

ॐ ह्रीं श्रीसमयसार-प्राप्त्युपायप्ररूपक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२५३।।

अब, 'समय के सार को कौन नहीं प्राप्त कर सकते हैं?'- यह तीन कलशों और एक गाथा द्वारा कहते हैं –

(हरिगीत)

ग्रहण कर मुनिलिंग या, गृहिलिंग विविध प्रकार के।
उनमें करें ममता, न जानें, वे समय के सार को।।४१३।।

(हरिगीत)

जो पुरुष तज पूर्वोक्त पथ, व्यवहार में वर्तन करें।
तर जायेंगे यह मानकर, द्रव्यलिंग में ममता धरें।।
वे नहीं देखें आत्मा, निज अमल एक उद्योतमय।
अर अखण्ड अभेद चिन्मय, अज अतुल आलोकमय।।२४१।।

तुष माँहि मोहित जगज्जन ज्यों, एक तुष ही जानते।
वे मूढ तुष-संग्रह करें, तन्दुल नहीं पहिचानते।।
व्यवहार-मोहित मूढ़ त्यों, व्यवहार को ही जानते।
आनन्दमय सद्ज्ञानमय, परमार्थ नहीं पहिचानते।।२४२।।

यद्यपी परद्रव्य है द्रवलिंग, फिर भी अज्ञजन।
बस! उसी में ममता धरें, द्रवलिंग मोहित अन्धजन।।
देखें नहीं, जाने नहीं, सुखमय समय के सार को।
बस! इसलिए ही अज्ञजन, पाते नहीं भवपार को।।२४३।।

ॐ ह्रीं व्यवहारविमूढाणां समयसारप्राप्त्यभावप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२५४।।

'मुनि और श्रावक के भेद से दो प्रकार का लिंग, व्यवहार से ही मोक्षमार्ग कहा है, परमार्थ से नहीं,' यह बात आगामी गाथा में कहते हैं –

(हरिगीत)

व्यवहार से ये लिंग दोनों, कहे मुक्तीमार्ग में।
परमार्थ से तो नहीं कोई, लिंग मुक्तीमार्ग में।।४१४।।

ॐ ह्रीं व्यवहारद्रव्यलिंगनिषेधक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२५५।।

अब, आचार्य अमृतचन्द्रदेव, दो कलशों में 'समयसार के अनुभव की महिमा का स्मरण' करते हैं –

(हरिगीत)

क्या लाभ है ऐसे अनल्प, विकल्पों के जाल से ?।
बस! एक ही है बात यह, परमार्थ का अनुभव करो।।
क्योंकि निज-रस-भरित परमानन्द के आधार से।
कुछ भी नहीं है अधिक सुन लो, इस समय के सार से।।२४४।।

(दोहा)

ज्ञानानन्दस्वभाव को, करता हुआ प्रत्यक्ष।
अरे! पूर्ण अब हो रहा, यह अक्षय जग-चक्षु।।२४५।।

ॐ ह्रीं समयसारमहिमाप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं... ।।२५६।।

अब, आचार्य कुन्दकुन्ददेव, ग्रन्थ को पूर्ण करते हुए 'समयसार के स्वाध्याय का फल' बताते हैं –

(हरिगीत)

पढ़ समयप्राभृत ग्रन्थ यह, तत्त्वार्थ से जो जानकर।
निज अर्थ में एकाग्र हों वे, परमसुख को प्राप्त हों।।४१५।।

ॐ ह्रीं अस्य ग्रन्थस्य स्वाध्यायफलरूपेण परमसुखप्ररूपक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२३२।।

समयसार की इस अन्तिम गाथा के बाद आचार्य अमृतचन्द्रदेव कहते हैं कि 'इसप्रकार यह आत्मा, ज्ञानमात्र सिद्ध हुआ' –

(दोहा)

इसप्रकार यह आतमा, अचल अबाधित एक।
ज्ञानमात्र निश्चित हुआ, जो अखण्ड स्वसंवेद्य।।२४६।।

ॐ ह्रीं आत्मानं ज्ञानमात्रसाधक-श्रीसमयसाराय नमः अर्घ्यं...।।२५७।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

जयमाला

(दोहा)

सर्वविशुद्धज्ञान की, महिमा अपरंपार।
उसके आश्रय से प्रभो, खुले मुक्ति का द्वार।। १।।

(वीर)

ज्ञानपुंज यह शुद्धातम ही सर्वविशुद्धज्ञानमय है।
यह टंकोत्कीर्ण परमातम अद्भुत अचल ध्यानमय है।।
न कर्त्ता है न भोक्ता है न अन्यरूप से संबंधित।
यह एक शुद्ध दृग ज्ञानमयी परिपूर्ण रूप में है अर्पित।। २।।

परमशुद्धनिश्चयनय से यह बात पूर्णतः सच्ची है।
इसमें न संशय रंचमात्र यह बात पूर्णतः पक्की है।।
साक्षात् शुद्धनिश्चयनय से नय कथन इस तरह आता है।
अपने निर्मल परिणामों का कर्त्ता धर्त्ता यह आतम है।। ३।।

राग-द्वेष परिणामों का कर्त्ता-भोक्ता भी आतम है।
ऐसा अशुद्धनिश्चय कहता रागी-द्वेषी यह आतम है।।
यह बातें सब निश्चयनय की जैनागम में ही आई हैं।
इन स्याद्वादमय कथनों में ना कोई व्यर्थ बताई है।। ४।।

असद्भूत व्यवहार कहे इस ही आतम के बारे में।
घट पट परद्रव्यों का कर्त्ता भी कहते हैं परमागम में।।
परमागम में अध्यात्मनयों की चर्चा पूरी आती है।
निश्चय-व्यवहार भेद उनके उनकी भी बातें आती हैं।। ५।।

सब उपयोगी आवश्यक हैं वस्तुस्वरूप बतलाते हैं।
भूले भटके भवि जीवों को वे मुक्तिमार्ग दिखलाते हैं।।

शिवपथ में बढ़नेवालों को वे सभी काम में आते हैं।
शोधी–खोजी भवि जीवों को शुद्धातम तक पहुँचाते हैं।। ६ ।।

यद्यपि ये सभी सत्य ही हैं पर परमसत्य एक ही है।
जिसके आश्रय से मुक्ति मिले वह परम सत्य एक ही है।।
वह तो है केवल परमशुद्धनिश्चयनय जिसका नाम कहा।
शुद्धातम को जो सदा अकर्त्ता ही कहता है रहा सदा।। ७ ।।

है अनन्तगुणमय शुद्धातम आनन्द का स्थान भी है।
शुद्धातम शुद्धज्ञान ही है अर सर्वविशुद्धज्ञान भी है।।
उसमें ही अपनापन हो तो समझो तुम सम्यग्ज्ञानी हो।
जो रमे जमे उसमें उनको मुक्तीमारग मिलता ही है।। ८ ।।

(दोहा)

सर्वविशुद्धज्ञान में जमें रमें जो सोय।
उसे सहजश्रद्धान में तुरत परमपद होय।। ९ ।।

ॐ ह्रीं श्री सर्वविशुद्धज्ञानप्ररूपकसर्वविशुद्धज्ञानाधिकाराभ्यां जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

९

स्याद्वाद और उपाय-उपेयभाव[1] गर्भित परिशिष्ट पूजन

स्थापना

(रोला)

अनेकान्तमय[2] आतम को इस समयसार में।
ज्ञानमात्र कहकर समझाया है गुरुवर ने।।
यह तो है एकान्त कथन - कुछ ऐसा कहते।
समझाया है उन्हें अरे इस परिशिष्ट में।।

स्याद्वाद शैली में साधक-साध्य भाव को।
विविध नयों से समझाते हैं करुणा सागर।।
अनेकान्तमय इस अखण्ड निज परमातम को।
खण्ड-खण्ड करके समझाते स्याद्वाद से।।

साध्यभाव को मोक्ष और साधक भावों को।
मोक्षमार्ग कहते हैं जिनवर दिव्यध्वनि में।।
और मोक्षमग निश्चय रत्नत्रय को कहते।
रत्नत्रय की पूरणता परमार्थ मोक्ष है।।

(दोहा)

महिमा आतमराम की अद्भुत अपरंपार।
जो जाने वे भव्यजन होवें भव से पार।।

ॐ ह्रीं श्री स्याद्वाद-उपायोपेयगर्भित-परिशिष्ट! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री स्याद्वाद-उपायोपेयगर्भित-परिशिष्ट! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ, ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री स्याद्वाद-उपायोपेयगर्भित-परिशिष्ट! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

---

१. उपाय-उपेयभाव को साधक-साध्यभाव भी कहते हैं।
२. अनन्तगुणों वाले, अनन्तधर्मों वाले

(रोला)

जल

जैसे जग में जल को जीवन कहती दुनियाँ।
वैसे ही है ज्ञानभाव आतम का जीवन।।
है अनन्त गुणमय यह ज्ञानमयी परमातम।
जाने स्व-पर सभी को यह ज्ञानी परमातम।।

ॐ ह्रीं श्री स्याद्वाद-उपायोपेयगर्भित-परिशिष्टाय जन्मजरामत्यु विनाशनाय जलं ..।

चन्दन

है स्वभाव से शीतल चन्दन सब जग जाने।
आतम भी है परम शान्त शीतल समतामय।।
है अनन्त गुणमय यह ज्ञानमयी परमातम।
जाने स्व-पर सभी को यह ज्ञानी परमातम।।

ॐ ह्रीं श्री स्याद्वाद-उपायोपेयगर्भित-परिशिष्टाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं .. ।

अक्षत

हैं अखण्ड अक्षत अविनाशी धवल निरंजन।
आतम भी अविनाशी एवं धवल निरंजन।।
है अनन्त गुणमय यह ज्ञानमयी परमातम।
जाने स्व-पर सभी को यह ज्ञानी परमातम।।

ॐ ह्रीं श्री स्याद्वाद-उपायोपेयगर्भित-परिशिष्टाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं ... ।

पुष्प

सुमन सुगंधित सब जग को आकर्षित करते।
गंध रहित यह आतम जग को जाने-देखे।।
है अनन्त गुणमय यह ज्ञानमयी परमातम।
जाने स्व-पर सभी को यह ज्ञानी परमातम।।

ॐ ह्रीं श्री स्याद्वाद-उपायोपेयगर्भित-परिशिष्टाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं... ।

नैवेद्य

यह चरु सुन्दर सरस आत्म अनुभव के सम्मुख।
हो जाता है विरस अरस आतम के सम्मुख।।
है अनन्त गुणमय यह ज्ञानमयी परमातम।
जाने स्व–पर सभी को यह ज्ञानी परमातम।।

ॐ ह्रीं श्री स्याद्वाद–उपायोपेयगर्भित–परिशिष्टाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं ... ।

दीप

स्व–पर प्रकाशक दीपक तमहर होता जग में।
निज आतम भी स्व–परप्रकाशक होता निज में।।
है अनन्त गुणमय यह ज्ञानमयी परमातम।
जाने स्व–पर सभी को यह ज्ञानी परमातम।।

ॐ ह्रीं श्री स्याद्वाद–उपायोपेयगर्भित–परिशिष्टाय मोहान्धकारविनाशयनाय दीपं ... ।

धूप

परम सुगन्धित धूप अग्नि में स्वाहा होती।
यह परमातम कर्म पुंज को स्वाहा करता।।
है अनन्त गुणमय यह ज्ञानमयी परमातम।
जाने स्व–पर सभी को यह ज्ञानी परमातम।।

ॐ ह्रीं श्री स्याद्वाद–उपायोपेयगर्भित–परिशिष्टाय अष्टकर्मदहनाय धूपं ... ।

फल

सरस सुगंधित फल तो अबतक अफल रहे हैं।
एकमात्र आतम का अनुभव सफल रहा है।।
है अनन्त गुणमय यह ज्ञानमयी परमातम।
जाने स्व–पर सभी को यह ज्ञानी परमातम।।

ॐ ह्रीं श्री स्याद्वाद–उपायोपेयगर्भित–परिशिष्टाय मोक्षफलप्राप्तये फलं ... ।

अर्घ्य

अर्घ्य चढ़ाया पर अनर्घ्य पद प्राप्त हुआ ना।
इसीलिये तो निज आतम का ध्यान लगाया।।
है अनन्त गुणमय यह ज्ञानमयी परमातम।
जाने स्व–पर सभी को यह ज्ञानी परमातम।।

ॐ ह्रीं श्री स्याद्वाद–उपायोपेयगर्भित–परिशिष्टाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं ... ।

अर्घ्यावली

।। परिशिष्ट : स्याद्वाद अधिकार ।।

(दोहा)

वस्तु व्यवस्था तत्त्व की, भाव उपाय-उपेय।
स्याद्वाद की सिद्धि को, थोड़ा-बहुत प्रमेय।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

टीका पूर्ण करने के उपरान्त अब आचार्य अमृतचन्द्रदेव, ग्रन्थ की जो विशेष विषय-वस्तु परिशिष्ट में स्पष्ट करना चाहते हैं, उसकी सूचना कलश द्वारा देते हैं –

(कुण्डलिया)

यद्यपि सब कुछ आ गया, कुछ भी रहा न शेष।
फिर भी इस परिशिष्ट में, सहज प्रमेय-विशेष।।
सहज प्रमेय-विशेष, उपायोपेय भावमय।
ज्ञानमात्र आतम, समझाते स्याद्वाद से।।
परमव्यवस्था वस्तु-तत्त्व की प्रस्तुत करके।
परमज्ञानमय परमातम का चिन्तन करते।।२४७।।

ॐ ह्रीं श्रीस्याद्वादान्तर्गत-उपाय-उपेयभावप्रकाशक-श्रीज्ञानज्योतिषे नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२५८।।

अब, आत्मख्याति के परिशिष्ट के रूप में स्याद्वादाधिकार में 'आत्मवस्तु को ज्ञानमात्र कहने पर भी स्वयमेव अनेकान्तात्मकत्व है – यह तत्-अतत्, एक-अनेक, सत्-असत्, नित्य-अनित्य आदि भंगों से सिद्ध करते हैं; इनमें सर्वप्रथम तत्-अतत् सम्बन्धी अनेकान्त के सूचक दो कलश कहते हैं' –

(हरिगीत)

बाह्यार्थ ने ही पी लिया, निज-व्यक्तता से रिक्त जो।
वह ज्ञान तो सम्पूर्णतः, पररूप में विश्रान्त है।।
पर से विमुख हो स्वोन्मुख, सद्ज्ञानियों का ज्ञान तो।
'स्वरूप से ही ज्ञान है' – इस मान्यता से पुष्ट है।।२४८।।

इस ज्ञान में जो झलकता, वह विश्व ही बस ज्ञान है।
अबुध ऐसा मानकर, स्वच्छन्द हो वर्तन करें।।
अर विश्व को जो जानकर भी, विश्वमय होते नहीं।
वे स्याद्वादी जगत् में, निजतत्त्व का अनुभव करें।।२४९।।

ॐ ह्रीं ज्ञान-ज्ञेययोः तत्-अतत्सम्बन्धि-स्याद्वादप्रकाशक-श्रीआत्मख्यातये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२५९।।

अब, 'आत्मवस्तु में अनेकान्तस्वरूप के अन्तर्गत एक-अनेक सम्बन्धी स्याद्वाद' को दो कलशों में स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

छिन–भिन्न हो चहुँ ओर से, बाह्यार्थ के परिग्रहण से।
खण्ड-खण्ड होकर नष्ट होता, स्वयं अज्ञानी पशु।।
एकत्व के परिज्ञान से, भ्रम-भेद जो परित्याग दें।
वे स्याद्वादी जगत् में, एकत्व का अनुभव करें।।२५०।।

जो मैल ज्ञेयाकार का, धो डालने के भाव से।
स्वीकृत करें एकत्व को, एकान्त से वे नष्ट हों।।
अनेकत्व को जो जानकर भी, एकता छोड़े नहीं।
वे स्याद्वादी स्वतःक्षालित, तत्त्व का अनुभव करें।।२५१।।

ॐ ह्रीं श्रीज्ञान-ज्ञेययोः एक-अनेकसम्बन्धि-स्याद्वादप्ररूपक-श्रीआत्मख्यातये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२६०।।

अब, 'अनेकान्तस्वरूप के अन्तर्गत सत्-असत् के स्वद्रव्य-परद्रव्य सम्बन्धी स्याद्वाद' को दो कलशों में कहते हैं –

(हरिगीत)

इन्द्रियों से जो दिखे, ऐसे तनादि पदार्थ में।
एकत्व कर हों नष्ट जन, निजद्रव्य को देखें नहीं।।
निजद्रव्य को जो देखकर, निजद्रव्य में ही रत रहें।
वे स्याद्वादी ज्ञान से, परिपूर्ण हो जीवित रहें।।२५२।।

सब द्रव्यमय निज आतमा, यह जगत् की दुर्वासना।
बस! रत रहें परद्रव्य में, स्वद्रव्य के भ्रम-बोध से।।
परद्रव्य के नास्तित्व को, स्वीकार कर सब द्रव्य में।
निजज्ञान बल से स्याद्वादी, रत रहें निजद्रव्य में।।२५३।।

ॐ ह्रीं श्रीस्वद्रव्येणाऽस्तित्व-परद्रव्येणनास्तित्व-सम्बन्धि-स्याद्वादप्ररूपक-श्रीआत्मख्यातये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२६१।।

अब, 'सत्-असत् के स्वक्षेत्र-परक्षेत्र सम्बन्धी स्याद्वाद' को आगे दो कलशों में बताते हैं –

(हरिगीत)

परक्षेत्रव्यापी ज्ञेय-ज्ञायक, आतमा परक्षेत्रमय।
– यह मानकर निजक्षेत्र का, अपलाप करते अज्ञजन।।
जो जानकर परक्षेत्र को, परक्षेत्रमय होते नहीं।
वे स्याद्वादी निजरसी, निजक्षेत्र में जीवित रहें।।२५४।।

मैं ही रहूँ निजक्षेत्र में, इस भाव से परक्षेत्रगत।
जो ज्ञेय उनके साथ, ज्ञायकभाव भी परित्याग कर।।
हों तुच्छता को प्राप्त शठ, पर ज्ञानिजन परक्षेत्रगत।
रे! छोड़कर सब ज्ञेय वे, निजक्षेत्र को छोड़े नहीं।।२५५।।

ॐ ह्रीं श्रीस्वक्षेत्रणास्तित्व-परक्षेत्रण-नास्तित्सम्बन्धि-स्याद्वादप्ररूपका-श्रीआत्मख्यातये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२६२।।

अब, 'सत्-असत् के स्वकाल-परकाल सम्बन्धी स्याद्वाद' को आगे दो कलशों में स्पष्ट करते हैं –

(हरिगीत)

निजज्ञान के अज्ञान से, गतकाल में जाने गये।
जो ज्ञेय उनके नाश से, निज नाश माने अज्ञजन।।
नष्ट हों परज्ञेय पर, ज्ञायक सदा कायम रहे।
निजकाल से अस्तित्व है – यह जानते हैं विज्ञजन।।२५६।।

अर्थालम्बनकाल में ही, ज्ञान का अस्तित्व है।
यह मानकर परज्ञेयलोभी, लोक में आकुल रहें।।
परकाल से नास्तित्व लखकर, स्याद्वादी विज्ञजन।
ज्ञानमय आनन्दमय, निज आतमा में दृढ़ रहें।।२५७।।

ॐ ह्रीं श्रीस्वकालेनास्तित्व-परकालेननास्तित्व-सम्बन्धि-स्याद्वादप्ररूपका-श्रीआत्मख्यातये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२६३।।

अब, 'सत्-असत् के स्वभाव-परभाव सम्बन्धी स्याद्वाद' का निरूपण आगे दो कलशों में करते हैं –

(हरिगीत)

परभाव से निजभाव का, अस्तित्व माने अज्ञजन।
पर में रमें जग में भ्रमे, निज आतमा को भूलकर।।
पर भिन्न हो परभाव से, ज्ञानी रमे निजभाव में।
बस! इसलिए इस लोक में, वे सदा ही जीवित रहें।।२५८।।

सब ज्ञेय ही हैं आतमा, यह मानकर स्वच्छन्द हो।
परभाव में ही नित रमें, बस! इसलिए ही नष्ट हों।।
पर स्याद्वादी तो सदा, आरूढ़ हैं निजभाव में।
विरहित सदा परभाव से, विलसें सदा निष्कम्प हो।।२५९।।

ॐ ह्रीं श्रीस्वभावेनाऽस्तित्व-परभावेन नास्तित्वसम्बन्धि-स्याद्वादप्ररूपक-श्रीआत्मख्यातये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२६४।।

अब, अन्त में 'नित्य-अनित्य सम्बन्धी स्याद्वाद' के दो कलश कहते हैं –

(हरिगीत)

उत्पाद–व्यय के रूप में, बहते हुए परिणाम लख।
क्षणभंग के पड़ संग निज का, नाश करते अज्ञजन।।
चैतन्यमय निज आतमा, क्षणभंग है पर नित्य भी –
यह जानकर जीवित रहें, नित स्याद्वादी विज्ञजन।।२६०।।

है बोध जो टंकोत्कीर्ण, विशुद्ध उसकी आश से।
चिद्परिणति निर्मल उछलती, से सतत इन्कार कर।।
अज्ञजन हों नष्ट किन्तु, स्याद्वादी विज्ञजन।
अनित्यता में व्याप्त होकर, नित्य का अनुभव करें।।२६१।।

ॐ ह्रीं श्री आत्मनः नित्याऽनित्यत्वसम्बन्धि-स्याद्वादप्ररूपक-श्रीआत्मख्यातये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२६५।।

स्याद्वाद-प्रकरण के अन्त में आचार्यदेव, दो कलश लिखते हैं –

(दोहा)

मूढ़जनों को इसतरह ज्ञानमात्र समझाय।
अनेकान्त अनुभूति में उतरा आतमराय।।२६२।।

अनेकान्त जिनदेव का शासन रहा अलंघ्य।
वस्तुव्यवस्था थापकर थापित स्वयं प्रसिद्ध।।२६३।।

ॐ ह्रीं श्रीज्ञानमात्रात्मनः अनेकान्तात्मकत्वप्रकाशक-श्रीआत्मख्यातये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२६६।।

इसके बाद परिशिष्ट में सैंतालीस शक्तियों की चर्चा की गई है, उसके उपरान्त उपसंहार में लिखे दो कलश इसप्रकार हैं –

(रोला)

इत्यादिक अनेक शक्ति से भरी हुई है।
फिर भी ज्ञानमात्रमयता को नहीं छोड़ती।।
और क्रमाक्रमभावों से जो मेचक होकर।
द्रव्य और पर्यायमयी चिद्वस्तु लोक में।।२६४।।

अनेकान्त की दिव्यदृष्टि से स्वयं देखते।
वस्तुतत्त्व की उक्त व्यवस्था अरे सन्तजन।।
स्याद्वाद की अधिकाधिक शुद्धि को लख अर।
नहीं लांघकर जिननीति को ज्ञानी होते।।२६५।।

ॐ ह्रीं श्रीस्याद्वादमयी-जिननीतिप्ररूपक-श्रीआत्मख्यातये नमः अर्घ्यं... ।।२६७।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

।। उपाय-उपेय अधिकार ।।

(दोहा)

परम शान्त सुखमय दशा, कही जिनागम मोक्ष।
रत्नत्रय की साधना, ही उपाय है मोक्ष।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

'ज्ञानात्मक आत्मा में ही उपायभाव अर्थात् साधकभाव तथा उपेयभाव अर्थात् साध्यभाव घटित होते हैं', यह तीन कलशों में कहते हैं –

(वसन्ततिलका)

रे! ज्ञानमात्र निज भाव अकम्पभूमि।
को प्राप्त करते जो अपनीतमोही।।
साधकपने को पा वे सिद्ध होते।
अर अज्ञ इसके बिना परिभ्रमण करते।।२६६।।[१]

स्याद्वादकौशल तथा संयम सुनिश्चिल।
से ही सदा जो निज में जमे हैं।।
वे ज्ञान एवं क्रिया की मित्रता से।
सुपात्र हो पाते भूमिका को।।२६७।।[२]

उदितप्रभा से जो सुप्रभात करता।
चित्पिण्ड जो है खिला निज रमणता से।।
जो अस्खलित है आनन्दमय वह।
होता उदित अद्भुत अचल आतम।।२६८।।

ॐ ह्रीं श्रीज्ञानमात्राऽऽत्मनः साध्य-साधकभावप्ररूपक-आत्मख्यातये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२६८।।

इसप्रकार 'स्याद्वाद के माध्यम से शुद्धस्वभाव की महिमा उदित होने पर, अन्य भावों से कोई प्रयोजन नहीं रहता है, अतः मैं चिन्मात्र एक अखण्ड स्वरूप ही हूँ', यह बात दो कलशों में कहते हैं –

(वसन्ततिलका)

महिमा उदित शुद्धस्वभाव की नित।
स्याद्वाददीपित लसत् सद्ज्ञान में जब।।
तब बन्ध–मोक्ष मग में आपतित भावों।
से क्या प्रयोजन है तुम ही बताओ।।२६९।।
निज शक्तियों का समुदाय आतम।
विनष्ट होता नयदृष्टियों से।।
खण्ड–खण्ड होकर खण्डित नहीं मैं।
एकान्त शान्त चिन्मात्र अखण्ड हूँ मैं।।२७०।।

ॐ ह्रीं श्रीस्याद्वादमहिमोदितचिन्मात्र-अखण्डाऽऽत्मस्वरूपप्रकाशक-श्रीआत्मख्यातये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२६९।।

अब, आगामी कलश में कहते हैं कि 'आत्मा, परज्ञेयों का ज्ञान करने वाला मात्र ही नहीं है; वह ज्ञान भी है, ज्ञेय भी है और ज्ञाता भी है' –

(रोला)

परज्ञेयों के ज्ञानमात्र मैं नहीं जिनेश्वर।
मैं तो केवल ज्ञानमात्र हूँ निश्चित जानो।।
ज्ञेयों के आकार ज्ञान की कल्लोलों से।
परिणत ज्ञाता–ज्ञान–ज्ञेयमय वस्तुमात्र हूँ।।२७१।।

ॐ ह्रीं श्रीआत्मनः ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयस्वरूपप्रकाशक-श्रीआत्मख्यातये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२७०।।

अब, तीन कलशों में 'आत्मा का अद्भुत अनेकान्तात्मक वैभव' प्रदर्शित करते हैं –

(रोला)

अरे! 'अमेचक' कभी कभी यह 'मेचक' दिखता।
कभी 'मेचकामेचक' यह दिखलाई देता।।
अनन्त शक्तियों का समूह यह आतम फिर भी।
दृष्टिवन्त को भ्रमित नहीं होने देता है।।२७२।।

एक ओर से 'एक' स्वयं में 'सीमित' अर 'ध्रुव'।
अन्य ओर से 'नेक' 'क्षणिक' 'विस्तारमयी' है।।
अहो! आतमा का अद्‌भुत यह वैभव देखो।
जिसे देखकर चकित जगज्जन ज्ञानी होते।।२७३।।
एक ओर से 'शान्त' 'मुक्त' 'चिन्मात्र' दीखता।
अन्य ओर से 'भव-भव पीड़ित' 'राग-द्वेषमय'।।
'तीन लोकमय' भासित होता विविध नयों से।
अहो! आतमा का अद्‌भुत यह वैभव देखो।।२७४।।

ॐ ह्रीं श्री आत्मनः अद्‌भुत-अनेकान्तात्मक-वैभवप्रकाशक-श्रीआत्मख्यातये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२७१।।

अन्त में, आचार्य आशीर्वादात्मक दो कलशों के माध्यम से 'आत्म-ज्योति के जयवन्त वर्तने की मंगल कामना' करते हैं –

(सोरठा)

झलकें तीनो लोक, सहज तेज के पुंज में।
यद्यपि एकस्वरूप, तदपि भेद दिखाई दें।।
सहज तत्त्व उपलब्धि, निजरस के विस्तार से।
नियत ज्योति चैतन्य-चमत्कार जयवन्त है।।२७५।।

(दोहा)

मोह रहित निर्मल सदा, अप्रतिपक्षी एक।
अचल चेतनारूप में, मग्न रहे स्वयमेव।।
परिपूरण आनन्दमय, अर अद्‌भुत उद्योत।
सदा उदित चहुँ ओर से, अमृतचन्द्र-ज्योति।।२७६।।

ॐ ह्रीं श्रीचैतन्यचमत्कार-अमृतचन्द्रज्योतिस्वरूपात्मप्रकाशक-आत्मख्यातये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२७२।।

'जीव, अनादि से कैसा था और आत्मानुभूति होने पर कैसा हो जाता है?' यह आगामी कलश में कहते हैं –

(हरिगीत)

गतकाल में अज्ञान से, एकत्व पर से जब हुआ।
फलरूप में रस–राग अर, कर्तृत्व पर में तब हुआ।।
उस क्रियाफल को भोगती, अनुभूति मैली हो गई।
किन्तु अब सद्ज्ञान से सब, मलिनता लय हो गई।।२७७।।

ॐ ह्रीं अज्ञान-आत्मज्ञानयोः द्वयोः फलप्ररूपक-श्रीआत्मख्यातये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२७३।।

अब, अधिकार के अन्त में 'आचार्य अमृतचन्द्र टीका के कर्तृत्व के सम्बन्ध में वस्तु-स्थिति स्पष्ट करते हुए अपना अकर्तृत्व प्रकाशित करते हैं'–

(हरिगीत)

ज्यों शब्द अपनी शक्ति से ही, तत्त्व प्रतिपादन करें।
त्यों समय की यह व्याख्या भी, उन्हीं शब्दों ने करी।।
निजरूप में ही गुप्त अमृतचन्द्र श्री आचार्य का।
इस आत्मख्याति में अरे! कुछ भी नहीं कर्तृत्व है।।२७८।।

ॐ ह्रीं व्याख्यायाः अकर्तृत्वप्रकाशक-श्रीआत्मख्यातये नमः अर्घ्यं..।।२७४।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

जयमाला

(दोहा)

यह परिशिष्ट विशिष्ट है, स्याद्वाद के द्वार।
वस्तुव्यवस्था तत्त्व की, प्रगट दिखावन हार।। १ ।।

(रोला)

सबसे पहले स्याद्वाद को गद्य–पद्य में।
चौदह भंगों द्वारा ही स्पष्ट किया है।।
फिर इन चौदह भंगों का भी अति सुन्दरतम।
एवं अनुपम विशद विवेचन किया गया है।। २ ।।

अनन्त गुणों के गोडाउन इस आत्मतत्त्व को।
ज्ञानमात्र कहकर समझाया विविध नयों से।।

अनन्त शक्तियों के संग्रहालय इस आतम की।
सैंतालीस शक्तियों का स्वरूप समझाया।। ३।।

सभी जीव जीते हैं बस जीवत्व शक्ति से।
वे सब चेतन होते हैं बस चितिशक्ति से।।
दृशि-ज्ञान शक्ति से वे सब देखें-जानें।
और सुखी होवें सुख शक्ति के प्रभाव से।। ४।।

वीर्यशक्ति से होते हैं वे शक्तिमान सब।
प्रभु शक्ति से सब प्रभावशाली होते हैं।।
विभु शक्ति से सभी गुणों में व्यापक होते।
इसप्रकार वे सब वैभवशाली होते हैं।। ५।।

सर्वदर्शि-सर्वज्ञ शक्ति से सब द्रव्यों को।
देखें-जानें सब झलकें स्वच्छत्व शक्ति में।।
अपना आतम झलके अपने ही आतम में।
यह प्रभाव होता है रे! प्रकाश शक्ति का।। ६।।

निज विकास में कोई भी संकोच नहीं हो।
यह प्रभाव है असंकुचित विकास शक्ति का।।
नहीं किसी का कारण हो न कार्य किसी का।
यह अकार्य कारण शक्ति का ही कमाल है।। ७।।

पर को जाने, जाना जाता पर के द्वारा।
स्व को जानें, स्व के द्वारा जाना जाता।।
जिस शक्ति के कारण ऐसा होता रहता।
उसे परिणम्य-परिणामकत्व शक्ति कहते हैं।। ८।।

नहीं किसी का ग्रहण-त्याग कर सकता आतम।
इस शक्ति को त्यागोपादानशून्य कहते हैं।।
जिस शक्ति के कारण षट्गुणी हानि-वृद्धि हो।
उस शक्ति को अगुरुलघुत्व शक्ति कहते हैं।। ९।।

उत्पाद–ध्रौव्य–व्यय टिके रहें नित जिसके कारण।
वह उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यमयी आतम शक्ति है।।
विरुद्ध और अविरुद्धभाव नित टिके रहे सब।
वह परिणाम शक्ति कहलाती है आगम में।। १० ।।

जिसके कारण यह आतम अमूर्त्त रहता है।
वह अमूर्त्तशक्ति कहलाती परमागम में।।
जिसके कारण रागभाव का कर्त्ता न हो।
उस शक्ति को अकर्त्तृत्व शक्ति कहते हैं।। ११ ।।

जिस शक्ति के कारण राग का भोक्ता न हो।
उस शक्ति को अभोक्तृत्व शक्ति कहते हैं।।
आतमप्रदेश में कंपन न हो जिसके कारण।
उस शक्ति को निष्क्रियत्व शक्ति कहते हैं।। १२ ।।

जिसके कारण नियत प्रदेशों में रहता है।
उसको नियतप्रदेशत्व शक्ति कहते हैं।।
जिसके कारण अपने धर्मों में ही व्यापे।
उसको स्वधर्मव्यापकत्व शक्ति कहते हैं।। १३ ।।

जिस शक्ति के कारण रे! सामान्यगुण सभी।
अर विशेषगुण भी होते हैं सभी निरापद।।
अर सामान्य–विशेष सभी पाये जाते हैं।
वह साधारण–असाधारण उभयरूप है[१]।। १४ ।।

अनन्तधर्म इकसाथ रहे बस जिसके कारण।
वह अनन्त धर्मत्व शक्ति बस कहलाती है।।
और परस्पर विरुद्ध धर्म जिस कारण रहते।
रे! विरुद्धधर्मत्व शक्ति बस उसको कहते।। १५ ।।

१. साधारण अर्थात् अस्तित्व आदि सामान्यगुण, असाधारण अर्थात् ज्ञानादि विशेष गुण और जो पाँच अजीव द्रव्यों में रहने से सामान्य और सभी छह द्रव्यों में न रहने से विशेष धर्म कहलाते हैं, ऐसे अमूर्त्तत्व आदि उभयरूप गुण साधारण–असाधारण कहे जाते हैं।

जिस शक्ति के कारण हो अनन्त शक्तिमय।
उस शक्ति को अरे तत्त्व शक्ति कहते हैं।।
जिस शक्ति के कारण यह पर रूप नहीं हो।
उस शक्ति को अरे अतत्त्व शक्ति कहते हैं।। १६ ।।

जिस शक्ति के कारण अनेक निज पर्यायों में।
व्यापक होकर भी एकत्व नहीं छोड़ता।।
वह एकत्वशक्ति कहलाती है इस जग में।
इसके कारण जिय की एकता कायम रहती।। १७ ।।

एक द्रव्यमय होने पर भी यह परमातम।
अरे बदलता रहता है निज पर्यायों में।।
यह होता है इसमें अनेकत्व शक्ति से।
इस परमातम का ऐसा अद्भुत स्वभाव है।। १८ ।।

जिसके कारण एक अवस्था वर्तमान में।
होती ही है उसे भाव शक्ति कहते हैं।।
उसे छोड़कर अन्य न कोई होय अवस्था।
जिसके कारण उसे अभाव शक्ति कहते हैं।। १९ ।।

जो पर्याय अभी है उसका अगले क्षण में।
भावाभाव शक्ति से ही तो व्यय होता है।।
विद्यमान जो अभी नहीं है उसका होना।
जिससे होता वह अभावभाव शक्ति है।। २० ।।

होने योग्य के होनेरूप से जो होती है।
उसको कहते भावभाव शक्ति आगम में।।
नहीं होने के योग्य नहीं होगी जो पर्यय।
वह अभाव–अभाव शक्ति का ही कमाल है।। २१ ।।

कारक से निरपेक्ष मात्र जो भवन रूप है।
भावशक्ति अद्भुत अनुपम ध्रुव परमधर्म है।।

कारक के अनुसार परिणमन करने वाली।
क्रिया शक्ति भी निज आतम का ही स्वभाव है।। २२।।

कर्म शक्ति के कारण निर्मल परिणामों को।
प्राप्त करें यह स्वयं स्वयं में तन्मय होकर।।
कर्तृत्व शक्ति के कारण निर्मल परिणामों का।
कर्त्ता होवे स्वयं सदा स्वाधीन भाव से।। २३।।

करण शक्ति के कारण निर्मल परिणामों का।
साधकतम कारण है इसलिये स्वयं करण है।।
सम्प्रदान शक्ति से आतम स्वयं स्वयं को।
सम्यग्दर्शन आदि शुद्धभावों को देता।। २४।।

अपादान शक्ति के कारण वह रत्नत्रय।
अरे निरन्तर स्वयं स्वयं में से आता है।।
और अधिकरण शक्ति से ही यह निज आतम।
बनता है आधार मुक्तिमारग का भाई।। २५।।

सम्बन्ध शक्ति यह बतलाती है कोई किसी का।
कोई नहीं है सब अपने-अपने स्वामी हैं।।
नहीं आतमा का कोई है इस जगती में।
और आतमा भी तो नहीं है और किसी का।। २६।।

सभी आतमा हैं अनन्त शक्ति के स्वामी।
हैं स्वभाव से परिपूरण भगवान आतमा।।
साधक और साध्यभाव सब हैं अपने में।
अपने में ही समा जाँय बस यही भावना।। २७।।

(दोहा)

सब कुछ इसमें आ गया, रहा न कुछ भी शेष।
निर्विकल्प अनुभव करो, हो आनन्द विशेष।। २८।।

महा जयमाला

(दोहा)

समयसार अध्यात्म का, है जीवन दातार।
आतम अनुभव के लिए, एकमात्र आधार।।१।।

(रोला)

कुन्दकुन्द की अद्‍भुत रचना समयसार है।
उनकी अनुभवजन्य देशना का निचोड़ है।।
समयसार के ज्ञाता-दृष्टा अर अध्येता।
उत्तम सुख को पाते - कहते कुन्दकुन्द मुनि[1] ।।२।।

समयसार से अधिक जगत् में कोई नहीं है[2] ।
अद्वितीय अक्षय-चक्षु है जगतीतल का[3] ।।
यह कहना है आत्मख्याति अमृतकलशों का।
समयसार सिरमौर जिनागम का अमृत है।।३।।

जिन-शास्त्रों का सार आगमों का आगम है।
साधकजन का कल्पवृक्ष है कामधेनु है।।
जिनशासन-स्तम्भ - कानजीस्वामी कहते[4] ।
इसीलिए वे इस पर जीवन अर्पित करते।।४।।

नव तत्त्वों में छुपी हुई जो आत्मज्योति है।
परमशुद्धनिश्चयनय की जो विषय-वस्तु है।।
समयसार का एकमात्र प्रतिपाद्य वही है।
जिसके आश्रय से रत्नत्रय पैदा होते।।५।।

नव अधिकारों में विभक्त यह समयसार है।
अलग दृष्टि से नवतत्त्वों का वर्णन करता।।
प्रतिपादन का मूल ध्येय तो भेदज्ञान है।
भेदज्ञान से सबसे आतम भिन्न बताता।।६।।

वर्णादि-रागादि नहीं मैं, न मेरे वे।
यह बतलाते हैं - 'जीवाजीवाधिकार' में।।
इनका कर्ता-भोक्ता भी यह जीव नहीं है।
यह बतलाते हैं - 'कर्ताकर्माधिकार' में।।७।।

पुण्य-पाप में भेद नहीं – इस परम सत्य का।
उद्घाटन करते विशुद्ध अध्यात्म-दृष्टि से।।
दोनों ही हैं हेय, न कोई उपादेय है।
यह समझाते - 'पुण्य-पाप एकत्व द्वार' में।।८।।

मिथ्यादर्शन अविरति अर कषाय योगों से।
कर्मों का आस्रव होता है सब जग जाने।।
ज्ञानीजन के मिथ्यादर्शन के अभाव में।
रे ! अनन्त भववर्द्धक आस्रवभाव नहीं हैं।।९।।

इसे मुख्य करके कहते हैं जोर-शोर से।
ज्ञानीजन को आस्रव भाव नहीं होते हैं।।
गुणस्थान के योग्य जहाँ जो आस्रव होते।
उन्हें गौण कर कहें निरास्रव ज्ञानी होते।।१०।।

आस्रव भावों के रुकने को संवर कहते।
ऐसा संवर भेदज्ञान होने पर होता।।
अरे ! धर्म की शुरूआत संवर से होती।
संवर ही है परम धरम अपने में होता।।११।।

गंगा–जल सम निर्मलता होती संवर में।
हिमगिरि सी शीतलता होती है संवर में।।
गंगोत्री है धर्मरूप गंगा की संवर।
संवर की महिमा से मण्डित धरती–अम्बर।।१२।।

यह 'संवर अधिकार' सुसज्जित भेदज्ञान से।
रतनत्रय पैदा होते हैं भेदज्ञान से।।
अभिनन्दन[1] अधिकार कहें ज्ञानीजन इसको।
सच्चे मन से अपनाओ तुम भेदज्ञान को।।१३।।

शुद्धि की उत्पत्ति को ही संवर कहते।
अर शुद्धि की वृद्धि निर्जरा कही गई है।।
सतत निर्जरा के दम पर ही शिवपुर मिलता।
जीवन में अति आवश्यक है तत्त्व निर्जरा।।१४।।

बन्धतत्त्व की चर्चा है – 'बन्धाधिकार' में।
मोक्षतत्त्व को समझाते हैं – 'मोक्षद्वार' में।।
बन्ध–हेतु बस! एकमात्र रागादिभाव हैं।
अर मुक्ति का हेतु कही है वीतरागता।।१५।।

बन्ध–मोक्ष की चर्चा से न जीव मुक्त हों।
बन्ध–मोक्ष के चिन्तन से न जीव मुक्त हों।।
बन्ध–मोक्ष से भिन्न आतमा को पहिचानो।
यदि होना है मुक्त उसी का ध्यान करो तुम।।१६।।

जिसतरह हमारी आँख देखती ही है केवल।
करे न भोगे अन्य किसी भी परपदार्थ को।।
उसीतरह यह आतम मात्र जानता ही है।
करे न भोगे, अन्य किसी भी परपदार्थ को।।१७।।

इसीतरह यह ज्ञान, कर्म को उसके फल को।
पुण्य–पाप के बन्ध, निर्जरा और मोक्ष को।।

मात्र जानता ही है केवल, करे न भोगे।
ग्रहण-त्याग भी नहीं करे, तुम यही जान लो।।१८।।

'सर्वविशुद्ध' यह ज्ञान आतमा ही है जानो।
अपने में ही रमो - जमो खुद को पहिचानो।।
आतम का कल्याण इसी में ही है आतम।
अधिक कहें क्या? एक आत्मा को ही जानो।।१९।।

आत्मख्याति में आगत कलशों से सम्बन्धित।
समयसार की गाथाओं का यह अवगाहन।।
समयसार का पाठ कराने का यह उपक्रम।
'समयसार मण्डल विधान' पूरा होता है।।२०।।

(दोहा)

आतम की आराधना, एकमात्र है सार।
एकमात्र यह भाव ही, जीवन का आधार।।२१।।

ॐ ह्रीं श्री परमागम-समयसाराय नमः महाजयमाला पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

पूजन आतमराम की, कीनी भक्ति-प्रमाण।
जो कुछ जैसी बन पड़ी, कीनी शक्ति-प्रमाण।।२२।।
दो हजार सोलह दिवस, मार्च माह बावीस।
यह विधान पूरा हुआ, मंगलमय आशीष।।२३।।

चतुर्दशी अष्टाह्निका, फागुन मास महान।
पूर्ण हुआ सानन्द यह, है आनन्द महान।।२४।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

।। इति 'समयसार महामण्डल विधान' सम्पूर्णम्।।

समयसार भक्ति

(मानव)

रे समयसार की पूजा, सा काम नहीं है दूजा।
है समयसार जिनवाणी, है कुन्दकुन्द की वाणी।। १।।

है समयसार शुद्धातम, है समयसार परमातम।
दूजा न इसका सानी, यह आतमराम कहानी।। २।।

यदि चाहो निज हित करना, भवि भव से पार उतरना।
तो समयसार को पढ़ना, उसमें ही रमना–जमना।। ३।।

है समयसार निज आतम, है समयसार परमागम।
यह अपनी ही शैली में, नवतत्वों का प्रतिपादन।। ४।।

है अद्भुत इसकी शैली, है अद्भुत इसकी महिमा।
है विषय–वस्तु भी अद्भुत, उसकी न कोई सीमा।। ५।।

यह असीम आतम का, प्रतिपादक ग्रन्थ महा है।
इसमें मुक्ति का मारग, ही सहज सुबोध कहा है।। ६।।

आत्मख्याति टीका में, अमृत ने अमृत घोला।
अधिक कहें क्या भाई! इसके रग–रग को खोला।। ७।।

तात्पर्यवृत्ति टीका में, जयसेन सूरि ने सबको।
अत्यन्त सरल शैली में समझाया अबुधजनों को।। ८।।

स्वामीजी ने प्रवचन कर इसके अन्तर को खोला।
सहज देश भाषा में समझाया सहज परोसा।। ९।।

सब पढ़ो ध्यान से इसको, सब गुनो ध्यान से इसको।
होगा कल्याण सभी का, इसमें संशय न समझो।। १०।।